परिषद् निबन्धावली—३

गल्प माला

भाग १

हिन्दी परिषद् में पढ़ी हुई गल्पों का संग्रह

सम्पादक

श्री धीरेन्द्र वर्मा एम० ए०

प्रकाशक

साहित्य-भवन लिमिटेड,

प्रयाग ।

सूची

परिचय

प्रस्तुत गल्प-माला प्रयाग विश्वविद्यालय हिन्दी परिषद् के प्रथम गल्प सम्मेलन के अवसर पर गतवर्ष पढ़ी गई, सर्वोत्तम गल्पों का संग्रह मात्र है। उक्त सम्मेलन के लिये लगभग सोलह गल्पें आई थीं जिनमें से छटी हुई आठ गल्पें सम्मेलन में पढ़ी गई थीं। इनमें से भी दो गल्पें कुछ कारणवश इस संग्रह में नहीं रक्खी जा सकी हैं। इस अवसर पर श्री प्रेमचन्द जी ने लखनऊ से आकर सभापति का आसन ग्रहण करने और गल्पकला पर एक अत्यन्त महत्व पूर्ण भाषण देने की कृपा की थी। श्री प्रेमचन्द जी की इस कृपा के लिये परिषद् सदा आभारी रहेगा। यह भाषण भूमिका के रूप में दिया जा रहा है।

समस्त गल्पें परिषद् के सदस्यों द्वारा लिखी गई हैं और ये विश्व-विद्यालय के विद्यार्थी ही हैं। आशा है हिन्दी जनता अपने देश के इन छोटे किन्तु होनहार पौधों में भविष्य के सुदृढ़ विशाल वृक्षों के रूप की संभावना देखकर संतुष्ट तथा हर्षित होगी। यह बतला देना अनुचित न होगा कि निर्णायकों के मत में पहली कहानी सब में अच्छी ठहरी थी तथा सभापति को दूसरी कहानी सब से ज़्यादः पसन्द आई थी।

इस गल्प-माला को प्रेस के भूतों से बचाकर इस रूप में रखने का समस्त श्रेय मेरे प्रिय साथी श्री रामकुमार वर्मा को है अतः वे विशेष धन्यवाद के पात्र हैं।

विश्वविद्यालय, प्रयाग
१०-१२-१६३०

धीरेन्द्र वर्मा,
सभापति, हिन्दी परिषद्।

भूमिका

मुझे आपका निमन्त्रण पाकर बहुत आनन्द हुआ, पर इसके साथ ही कुछ शंका भी हुई कि कहीं गल्प सम्मेलन भी हमारे कवि सम्मेलनों की भाँति एक रोग न हो जाय और छात्रवर्ग इसके पीछे पड़कर अपने और ज़रूरी काम न छोड़ बैठें। जिनमें गल्प रचना की ईश्वरदत्त शक्ति है उनके लिये तो समय की कोई कमी नहीं, वे जब चाहें कहानी लिखना शुरू करें, लेकिन अधिकांश छात्रों के लिये यह समय संग्रह का है। पहले अपना कोष भर लीलिए, अध्ययन से, अवलोकन से, वार्तालाप से, जहां तक सम्भव हो अपने अनुभव बढ़ाइये, अपनी शैली को प्रौढ़ कीजिए, फिर इन सामग्रियों से सुसज्जित होकर अखाड़े में उतरिए। उस पहलवान को आप क्या चतुर कहेंगे जो शस्त्रों को धारण करना न जानता हो, चोट और बचाव के गुर न जानता हो, कुश्ती के पेंचों से अनभिज्ञ हो और अखाड़े में खड़ा हो जाय। समय के साथ साहित्य के उद्देश्यों में भी परिवर्तन होता जाता है। इसके पहले साहित्य का जो युग गुज़र गया है, वह समस्या-पूर्तियों का युग था। हिन्दी और उर्दू दोनों भाषाओं के कविगण केवल एक उद्देश से रचनायें करते थे। मनोरंजन ही उनका ध्येय था। अपना और अपने मित्रों तथा रसिकों का दिल खुश करना ही उनका आदर्श होता था। लेकिन अब हमारे सामने वह आदर्श नहीं है। हम साहित्य को केवल मनो-

रंजन की वस्तु बनाकर उसे उसके ऊँचे पद से गिराना नहीं चाहते। मनोरंजन विलासिता है और यह समय विलासिता में मग्न होने का नहीं है। हम और आप एक ऐसे संग्राम में लगे हुए हैं, जिसका अंत चाहे जो कुछ हो, पर उसका आविर्भाव हमारे चरित्र पर और इसीलिये हमारे साहित्य पर एक स्थायी प्रभाव डालेगा। जीवन के प्रत्येक अंग में संघर्ष हो रहा है। शिक्षा में, समाज में, रीत-रिवाज़ में, राजनीति में, चारों ओर संघर्ष की ध्वनि सुनाई दे रही है! क्या हमारा साहित्य इस संघर्ष में भी मनोरंजन और विलासिता और संयोग-वियोग के झगड़ों में फँसा पड़ा रहेगा। साहित्य अपने समय का आईना होता है। हमारी अभिलाषाएं और इच्छाएं, हमारी बेचैनी और तड़प, हमारी वेदनाएँ और चिन्ताएँ, सभी उसमें प्रतिबिम्बित हों, जभी उसे हमारे साहित्य कहलाने का गौरव प्राप्त हो सकता है। यह सच है कि प्रेम की कहानियाँ, उसके घात-प्रतिघात में पाठक को आनन्द आता है, लेकिन जिस देश में रामायण और महाभारत जैसी पुस्तकों का अब भी प्राधान्य है, उस देश में जन-रुचि अभी इतनी विकृत नहीं हुई है कि उसे स्त्रियों के भगाए जाने और चोरियों का पता लगाने और खून-खच्चर या अस्वाभाविक कुवासनाओं में ही आनन्द मिल सके। लेखक का चरित्र बड़ी हद तक साहित्य के सुन्दर या असुन्दर होने का हेतु बन जाता है। ऊँचे चरित्र का आदमी तुच्छ व्यवसाय या क्षणिक लाभ के भावों से प्रेरित होकर कोई किताब न लिखेगा। बुरे आचरण का मनुष्य यदि कोई अच्छी पुस्तक भी लिखे तो उसके ऊँचे विचारों का पाठक पर

कोई प्रभाव न होगा, क्योंकि वह ख़ूब जानता है ये लेखक के काल्पनिक विचार मात्र है, वह इनका व्यवहार नहीं करता। मसल है प्याले में जो चीज़ होती है از کوزه همان تراود که درست वही उसमें से टपकती है। एक ज़माना वह था जब चरित्र-भ्रष्ट हुए बग़ैर अच्छे कवि होने की संभावना ही असंभव समझी जाती थी। उसका परिणाम क्या हुआ। हमारा यह साहित्य एकांगी होकर रह गया। उर्दू या हिन्दी में शृंगार प्रधान ही नहीं है बल्कि इसके सिवा और कुछ है ही नहीं। दो एक कवियों को छोड़कर जिनके दिल पर समय की दुर्व्यवस्था की चोट लगी, और सभी ने भोग-विलास के उद्गारों से ही साहित्य की पूर्ति की जिससे अंत में हमारा अधःपतन हुआ।

वर्तमान युग उपन्यासों और गल्पों ही का है। समस्त संसार में उपन्यास साहित्य का प्रधान अंग बना हुआ है, और इसमें संदेह नहीं कि आजकल रचनाओं में कला का जो आदर्श नज़र आता है वह आज के सौ या पचास वर्ष पहले से कहीं बढ़ा हुआ है। आज का एक साधारण उपन्यास अगर वाल्टर स्काट की कलम से निकला होता तो वह एक अलौकिक वस्तु समझा जाता। लेकिन इस समय कोई उसे जानता भी नहीं। उसी तरह जैसे पहले अटलांटिक पार करने वाला नाविक अमर हो गया है मगर आज साधारण कप्तान भी उस सागर को पार करता है और कोई उसे पूछता भी नहीं। ऐसी दशा में कला को बाक़ायदा सीखने की ज़रूरत पड़ गई है। आज हममें से जो

मनुष्य साहित्य रचना के लिये क़लम उठाए, उसके लिये ज़रूरी है कि वह संसार के साहित्य से अच्छी तरह परिचित हो और उसकी वर्तमान प्रगति से भी बिलकुल कोरा न हो। इसके अतिरिक्त उसे मनोविज्ञान शरीर-विज्ञान, भूगोल आदि शास्त्रों का भी समुचित ज्ञान हो। अध-कचरे सामान को लेकर आजकल जिस तरह हम कला-कौशल में सफल नहीं हो सकते, उसी भांति साहित्य में भी कोई यादगार चीज़ नहीं लिख सकते। हमारे उच्च शिक्षा प्राप्त महानुभाव क्यों हिन्दी साहित्य को अनादर की दृष्टि से देखते हैं और उसका पढ़ना अपने लिये अपमान जनक समझते हैं ? इसीलिये कि वह जानते हैं कि यह अधकचरे लेखकों की उपज है, जो मानुषी भावों को नहीं समझता, जिसकी रचना में उसे प्रौढ़, दार्शनिक विचार नहीं मिल सकते, मानव जीवन की कोई सुन्दर, सूक्ष्म आलोचना नहीं मिल सकती। फिर उसके पढ़ने में वे क्यों अपना समय नष्ट करें ? इसका कारण क्या है ? यही है कि दुर्भाग्य से अभी साहित्य सेवियों ने ऊँचे आदर्शों को सामने नहीं रक्खा और समय के प्रवाह, या परिस्थिति के झोंके से इस लाइन में आ गए और अब केवल इसलिये इधर पड़े हुए हैं कि उनके लिये निर्वाह की और कोई सूरत नहीं है। आज उन्हें कोई अच्छा सा काम मिल जाय तो वे साहित्य का बस्ता बाँधकर ताक में रक्खेंगे और फिर उसे कभी न खोलेंगे। ऐसे उद्देश्यहीन लेखकों से साहित्य का मुख उज्ज्वल नहीं हो सकता। हमें ऐसे साहित्य सेवियों की ज़रूरत है जो ऊँची से ऊँची शिक्षा प्राप्त करके इस क्षेत्र में आएं,

साहित्य कला के मर्मज्ञ हों, उसे बाक़ायदा सीखा हो, उसके लिये अपने को तैयार किया हो, मार मार कर हकीम न बनाए गए हों, बल्कि अपने जीवन को सार्थक बनाने के लिये उन्होंने इसी मार्ग को स्वेच्छा से चुना हो।

यूरोप में तो अन्य वस्तुओं की भाँति अब साहित्य भी 'मैकेनिकल' रीति से तैयार किया जाने लगा है। यहाँ भी कार्य-विभाग के नियम का उपयोग किया जाने लगा है। कहानी का कथानक लिखने वाले अलग होते हैं। वे अपने अपने प्लाट ले लेकर लेखकों के पास जाते हैं और जो लेखक जो प्लाट पसंद करता है, उसे बेचकर फिर अपनी झोली समेट दूसरे लेखक के पास पहुँच जाते हैं। लेखक बड़ी तेज़ी से लिखता है और तब उसका संशोधन आदि करने के लिये एक तीसरे आदमी को देता है, जो उसमें उचित स्थानों पर विराम लगाता है, भाषा को सजाता है। चौथी जमाअत उन लोगों की है जो लेखक से उसकी रचना लेकर सम्पादकों या प्रकाशकों से सौदा पटाते हैं और लेखक को इसके लिये झक झक नहीं करनी पड़ती। वह प्रत्येक पत्र या प्रकाशक की नीति या रुचि से परिचित होते हैं इसलिये लेख को वहीं भेजते हैं जहाँ उसका स्वागत किया जाय और जहाँ उसका अच्छा पुरस्कार मिले। इस तरह एक गल्प चार मनुष्यों के हाथ से निकलती है। लेखक को सोचने की ज़रूरत नहीं पड़ती। वहां साहित्य की माँग इतनी ज्यादा है कि लेखक अगर सभी काम खुद करे तो वह माँग पूरी न कर सके। हिन्दुस्तान में अभी वह दिन बहुत दूर है और मैं

तो यही चाहूँगा कि वह दिन यहाँ कभी न आए, क्योंकि साहित्य फिर केवल व्यवसाय की वस्तु हो जायगी।

रचना शक्ति यों तो कमोवेश सभी में मौजूद होती है। स्वप्न में, अँधेरे में, क्रोध में, हमें इसका स्वयं अनुभव होता है, लेकिन साहित्यिक अभिरुचि रखने वाले मनुष्य के लिये उसे 'ट्रेन' करने की ज़रूरत होती है। कभी कभी तो अज्ञान भाव से उसकी ट्रेनिंग हो जाती है लेकिन बहुधा हमें इच्छित रूप से उसे साधना पड़ता है। इसके लिये अभ्यास की ज़रूरत है। दो आदमियों को बातें करते सुनिए और कल्पना कीजिए कि किन परिस्थितियों में उन लोगों ने यह बातें की होंगी। पुराने समाचार पत्रों के मोटे मोटे शीर्षकों से भी यह अभ्यास किया जा सकता है। एक शीर्षक है; एक विद्यार्थी ने अपनी पत्नी को विष दे दिया। अब सोचिए विद्यार्थी किस आकार प्रकार का व्यक्ति है, उसके चरित्र की कल्पना कीजिए, उसकी स्त्री के रूप-रंग और आचार विचार की भी कल्पना कीजिए, उसके घर के प्राणियों की कल्पना कीजिए। विष के कई कारण हो सकते हैं। क्या सम्बन्ध था? जीवन से निराशा थी; क्रोध था? इस तरह सोचते रहने से कल्पना शक्ति तीव्र और बलवान होती है। दो आदमियों की बातें सुनकर कल्पना कीजिए कि ये बातें किन परिस्थितियों में की जा सकती हैं।

रचना-शक्ति को जगाने के लिये बहुधा उत्तेजन की ज़रूरत होती। वह छिपी पड़ी रहती है। सहसा कोई ऐसा कारण हो जाता है कि वह सचेत हो जाती है और तब उसके छिपे हुए जौहर खुलने

लगते हैं। जिस आदमी ने कभी वाद-विवाद में भाग न लिया हो उसे क्या मालूम है कि उसकी तर्कना शक्ति कितनी वेगवती है। बहुधा प्रेम की चोट ने कवित्व शक्ति को जागृत कर दिया है। क्रोध में, प्रेम में, नशे में, या इसी तरह की और कोई उत्तेजना पाकर हमारी कल्पना सजीव हो जाती है और हमें वह बातें सूझने लगती हैं जो साधारण दशा में कभी न सूझतीं। कुछ लोगों की आदत है कि जब तक वह नशे में चूर न हों उन्हें कुछ सूझता ही नहीं। कुछ लोगों की रचना-शक्ति दरिया के किनारे टहलने से जागती, किसी की धूप में लेटने से, किसी की इत्र सूँघने से, किसी की हुक्क़ा पीने से, किसी की गीत सुनने से। संगीत से रचना शक्ति को विशेष स्फूर्ति मिलती है। अक-सर मनोहर, विशाल, महान् प्राकृतिक दृश्यों के देखने से हमारी कल्पना सजग हो जाती है। उस उत्तेजना की दशा में हमारी कल्पना जितनी चित्रमय हो जाती है, उसकी उड़ान जितनी ऊँची हो जाती है, उसके भाव जितने कोमल हो जाते हैं, करुणा, कुतूहल, शौर आदि मनोभावों को उस चरम सीमा तक पहुँचाने के लिये अकसर लेखकों के बाहरी ऐन्द्रिक साधनों की आवश्यकता हुआ करती है। हालाँ कि कुछ लोग ऐसे भी हैं जिनकी इच्छा ही उनकी समस्त शक्तियों को उत्तेजित कर देती है। वह क़लम लेकर बैठे और रचना देवी अपने वरदानों का थाल लेकर उनके सामने हाज़िर हुई। मगर अनुभव बतलाता है कि प्राकृतिक शोभा का सामीप्य या मधुर संगीत का कल्पना पर बहुत ज़्यादा असर पड़ता है।

लेकिन कल्पना अनुभव के बिना कुछ भी नहीं कर सकती। हमारा अनुभव जितना ही विस्तृत होगा उतनी ही सजीव और विचित्र हमारी कल्पना होगी। अगर हमें साहित्य में कुछ करना है तो अनुभव प्राप्त करने का कोई अवसर न छोड़ना चाहिए। जीवन में कोई व्यापार, कोई रहस्य इतना गर्हित नहीं कि हम उससे दूर भागें। अगर इस उद्देश्य से हमें संदिग्ध मार्ग पर भी चलना पड़े, कुछ निन्दा और जुगुप्सा भी हो, तो उसकी परवा न करनी चाहिए। क्रोध और घृणा, आशा और भय, प्रेम और ईर्षा, वात्सल्य और दया, और उन भावों से उत्पन्न होने वाली प्रगतियों का हमें भलीभांति अध्ययन करना चाहिए। किसान की झोपड़ी और राज दरबार, दोस्तों की मजलिस और काल कोठरी, नदी का तट और गंदा नाला, साधुओं का सत्संग और दुष्टों का दुराचार, इन सभी का साहित्यिक प्राणी के लिये समान मूल्य है। प्रकृति के दृश्यों को देखिये, और उसके परिवर्तनों का अवलोकन कीजिए। इस विषय में आप अति के दोषी नहीं हो सकते। यह सच है कि कल्पना इन भावों और इन परिस्थितियों को दुहराने का नाम नहीं है। वह तो स्मृति है। यद्यपि कल्पना का आधार स्मृति है पर स्मृति और कल्पना में बड़ा अंतर है। कल्पना का काम उसी रंग और मसाले से एक नए चित्र, एक नई मूर्ति, एक नए संसार के रचने का नाम नहीं है। बहुत से लोग ऐसे मिलेंगे जिन्होंने बहुत दुनिया देखी है, हरेक स्थिति के आदमियों से मिले हैं, लेकिन उनमें कल्पना का अभाव है। कल्पना के लिये कोई नियम, कोई क़ायदा नहीं। वह उन सामग्रियों का

मनमाना प्रयोग करती है। कभी उनके टुकड़े करती है, कभी उन्हें मिलाती है। अध्यापक की एक घुड़की कल्पना की पिटारी में जाकर किसान के प्रति ज़मींदार का क्रोध, या सिपाही के प्रति फौजी अफ़सर का कठोर दंड बन सकता है। कहते हैं कि मेरी कारेली ने डेनमार्क की यात्रा किए बिना ही डेन्मार्क के प्राकृतिक दृश्यों का ऐसा सजीव चित्र खींचा था कि देखने वाले दंग रह गए थे। जिसने हिन्दोस्तान की गर्मी सही है, वह अफ्रीका की गरमी की कल्पना कर सकता है।

लेकिन यहां भी कुछ होशियार रहने की ज़रूरत है। किसी स्थिति का चित्र केवल कल्पना के आधार पर खींचने में ग़ल्ती हो जाने का बड़ी संभावना है। जो आदमी कभी फ़ौजी छावनी में नहीं गया, वह केवल बोर्डिङ्ग हाउसों के अनुभव पर सैनिक जीवन की सच्ची कल्पना नहीं कर सकता। जिसने कभी राज दरबार नहीं देखा उसे ख्वामख्वाह राज दरबार का दृश्य दिखाने की ज़रूरत ही क्या है। वही चीज़ें दिखाइए जिन पर आप को विश्वास हो।

एक आलोचक ने लिखा है कि उत्तम उपन्यास केवल लेखक का जीवन-चरित्र होता है। उसकी घटनाओं का क्रम, परिस्थिति, काम सब कुछ बदल जाता है, पर उसका आधार लेखक के मनोगत भाव ही होते हैं और यह कथन अक्षरशः सत्य है। अपने चरित्रों की भिन्न भिन्न दशाओं और आवेगों के दिखाने के लिये लेखक को अपनी ही आत्मा की जेब टटोलनी पड़ती है, उसे अपने ही को उन परिस्थितियों में रख

कर अपने द्वारा सोचना पड़ता है कि उस वक्त मैं क्या करता, या मेरे मन में क्या विचार या भाव पैदा होते। पहले यह कठिन मालूम होता है, पर अभ्यास से उतना कठिन नहीं रह जाता। ऐसी ही दशा में हमारे विभिन्न अनुभव हमारे काम होते हैं। और इसी कारण प्रत्येक लेखक की रचना पर लेखक के व्यक्तित्व की छाप पड़ती है, क्योंकि सभी मनुष्य एक घटना को एक ही दृष्टि-कोण से नहीं देखते। हमारी प्रकृति, स्वभाव, परम्परा और शिक्षा-दीक्षा के अनुसार ही उस में अंतर होता है। एक बालक को रोते देख कर किसी को उसके प्रति दया उत्पन्न होती है, किसी को क्रोध आता है कि यह क्यों शोर मचा रहा है। इसी आत्म निरीक्षण के कारण बहुधा रचयिताओं के रचना में पुनरुक्ति का दोष आजाता है। ये अपने विचार में तो बिलकुल नई बात लिखते हैं लेकिन चूँकि ऐसा अनुभव वह पहले एक बार प्रकट कर चुके हैं, अज्ञात रूप से वह फिर उसी को प्रकट करते हैं, बड़े से बड़े लेखकों की रचनाओं में यह दोष मौजूद रहता है। अक्सर लोग यह पूछते हैं कि लेखकों को प्लाट और चरित्र कहां मिलते हैं? इसका जवाब देना सहल भी है और मुशकिल भी। जिसकी कल्पना परिकृत और अभ्यस्त है उसे प्लाटों और चरित्रों की कमी नहीं रहती। ऐसा कौन अभागा है जिसके दस पाँच मिलने जुलने वाले न हों, घर में दो चार आदमी नहीं। रचयिता अपनी कल्पना द्वारा इन्हीं माने-जाने व्यक्तियों को काट छाँट कर, घटा बढ़ा कर नए चरित्र बना लेता है। कभी तो इस परिवर्तन और परिवर्धन में असली चित्र ग़ायब

हो जाता है पर वह जानने वालों को साफ़ नज़र आजाता है। अकसर लेखक तौहीन के अभियोग या मित्रों की नाराज़गी के भय से अपने चरित्रों को इतना तोड़ मरोड़ देता है कि उनमें असलियत का केवल बीज मात्र रह जाता है। बहुधा लेखकों को दूसरे लेखकों के चरित्रों से नए चरित्र बनाने पड़ते हैं। बड़े बड़े लेखकों ने इस भाँति दूसरों के चरित्रों को अपनायाँ है। अकसर पुराने कथा-ग्रंथों से ऐसे प्लाट मिल जाते हैं जिन्हें नए साज़-सामान से सजा कर बहुत मनोरंजक बनाया जा सकता है। हाँ, यह समझ लेना चाहिए कि प्लाट कहीं बिलकुल बना बनाया तैयार नहीं मिलता। लेखक की कल्पना कहीं उसमें अपनी इच्छा या उद्देश के अनुसार उलट पलट कर लिया करती है। अकसर जहाँ प्लाट की आशा कीजिए वहाँ नहीं मिलता। युरोप के और भारतवर्ष के भी कुछ लेखक अपने साथ नोट-बुक रखते हैं। उसमें वह अपने अनुभव, अनोखे चेहरे, चुभने वाले दृश्य, या गँवारों की बोलियाँ लिखते जाते हैं। अवसर पड़ने पर इन चीज़ों से उन्हें काफ़ी मदद मिलती है। लेकिन अभ्यास के बाद लेखक को नोट-बुक रखने की ज़रूरत नहीं रहती। उसका मस्तिष्क काट छांट का काम आप कर लेता है और हरेक चीज़ अपने स्थान पर आप ही आप पहुँच जाती है और मौके पर आप ही आप निकल भी आती है।

जासूसी कहानियों के विषय में मैं एक प्रसिद्ध जासूसी लेखक जी. के. चेस्टरटन की सम्मति आप को सुनाता हूँ जिसका तात्पर्य यह है कि विचारावली सदैव आगे बढ़ते हुए क्रम से आवे, प्रत्येक विचार कुछ न कुछ

बात अवश्य बतला दे, अन्तिम विचार तो समस्त घटनाओं का उद्घाटन करदे पर विशेषता यह हो कि सब से महत्वपूर्ण घटना प्रकाश में आवे। मुख्य बात तो यह सोची जानी चाहिए कि कहानी का मुख्य प्रदर्शन क्या है? उसे फिर कम और अधिक भागों में विभाजित कर लिया जावे। कम भाग तो प्रारम्भ में रखा जावे और सब से बड़ा भाग अन्त में। पर ध्यान में यह रखना आवश्यक है कि छोटे से छोटा प्रदर्शन कुछ न कुछ बातें प्रकाश में अवश्य लादे और इस प्रकार हृदय में सब बातों के जानने की इच्छा उत्पन्न कर दे।

जीवन और कथा में एक बड़ा अन्तर है। कुछ लोग कथा को जीवन से मिला देना चाहते हैं। उनका ख़्याल है कि कथा जीवन ही के अनुरूप होनी चाहिए, पर वास्तव में जीवन और कथा में बड़ा अंतर है। जीवन विशाल है। उसके अंत की हमको बिलकुल ख़बर नहीं होती। अकसर उसका अंत उस वक़्त हो जाता है जब उसकी ज़रूरत न थी। कोई क्रम, कोई श्रृंखला नहीं होती। व्यक्तित्व किसी नियम का पाबन्द नहीं होता। जिनसे हमें बड़ी बड़ी आशा होती है, वह दग़ा दे जाते हैं, जिन्हें हम समझते हैं कि इनके पाँव कभी डिग नहीं सकते, वे पहले ही हल्ले में मैदान छोड़कर भाग खड़े होते हैं। मगर कला में हमें इतनी स्वाधीनता नहीं। मौत हमारी गालियां सुनने नहीं आती, न ब्रह्मा को हमारी शिकायतों की चिन्ता होती है। लेकिन लेखक जनता के आक्रमणों से इतना अजेय नहीं होता। अगर आप की रचना का अन्त उस स्थल पर हुआ है जब पाठक उसे नहीं

चाहता तो आप की रचना की कमज़ोरी है। अगर आप के चरित्रों में कोई आकस्मिक परिवर्तन हो जाता है तो आप के पास शिकायती चिट्ठियां आने लगती हैं। जीवन किसी नियम का पाबन्द नहीं, लेकिन कला नियमों की पाबन्द है। जीवन उपन्यास नहीं बन सकता, हाँ उसके आधार पर उपन्यास की रचना हो सकती है। उपन्यास पुरानी कहानियों का ही विकसित रूप है और सुखांत होने की शर्त अब भी उस पर लागू होती है। जनता दुखान्त दृश्य नहीं देखना चाहती। फ़िल्मों में बहुधा बड़ी बड़ी नामी दुखान्त कथाओं को मजबूरन सुखान्त बनाना पड़ता है। यह भी ध्यान रखना चाहिए कि दृश्य, या किसी स्थल, या किसी चरित्र के लम्बे वर्णन से कहानी शिथिल हो जाती है। पाठक ऐसी बातें बताया जाना पसन्द नहीं करता जो उसे मालूम हैं, या जिनका वह आसानी से अनुमान कर सकता है। संकेत रचना की जान है। उतना लिखिए जितना कहानी को समझाने के लिये आवश्यक हो, शेष संकेतों द्वारा समझाने की चेष्टा कीजिए। गल्प के लिये तो यह आवश्यक है कि दृश्यों का वर्णन भी कहानी का एक अंश हो। किसी दृश्य का इसलिये वर्णन न कीजिए कि दृश्य बहुत सुन्दर है, या आप उसका बहुत सुन्दर चित्र खींच सकते हैं। बल्कि उससे आपकी कहानी पर कोई असर पड़ता है। रात के भयंकर अंधेरे का ज़िक्र करने की ज़रूरत उसी हालत में होगी अगर आप कोई चोरी की घटना दिखा रहे हों, ख्वामख्वाह संध्या या प्रभात के अलंकृत वर्णन की कोई ज़रूरत नहीं।

शायद मेरा विषय ज़रूरत से ज़्यादा बढ़ गया है। इसके लिये आप लोग मुझे क्षमा कीजिएगा। मैं केवल दो बातें और आपसे निवेदन करूँगा। गल्पकार में तीन शक्तियों का होना परमावश्यक है। रचना कौशल, कथा और चरित्र चित्रण। रचना सजीव, स्वाभाविक, सुबोध और विनोद-मय होनी चाहिए। अगर आप की शैली गांभीर्य प्रधान है तो आप दार्शनिक या वैज्ञानिक लेख लिखने में सफल हो सकते हैं। गल्प लिखने में नहीं। गल्प में चुटकियाँ और व्यंग का पुट रहना ज़रूरी है। बंकिम बाबू इसीलिये इतने सर्वप्रिय हैं। कथानक ऐसा होना चाहिए कि मिथ्या सत्य का रूप धारण कर ले, आपके अनुभव के बिखरे हुए टुकड़े इस तरह मिल जायँ कि उसकी एक सजीव, जीती-जागती मूर्ति खड़ी हो जाय और यह दोनों ही बातें अभ्यास से प्राप्त हो सकती हैं, लेकिन चरित्र रचना जो ख़याली सूरतों में इच्छा, विचार, धैर्य और साहस का मंत्र सा फूँक देता है, सिखाने से या अभ्यास से नहीं आती। ऐसे चरित्रों की रचना जिनसे हर्ष और शोक में आप उसी तरह बल्कि उस से कहीं ज़्यादा लगन के साथ शरीक हों जैसे अपने निकट संबंधी या अभिन्न मित्र के साथ शरीक होते हैं, जिसके विषय में आप उसी तरह आक्षेप और आलोचनाएं करें जैसे जानेबूझे मनुष्यों के विषय में करते हैं, दैवी वरदान है।

این سعادت بزور بازو نیست گر نہ بخشد خدائے بخشندہ

लेखक का रचना कौशल इसी स्थान पर अपने जौहर दिखाता है। उन्हीं चरित्रों के द्वारा हमें लेखक की मनोवृत्तियों का पता चलता है, जीवन

में उसकी क्या आकांक्षाएं हैं, उसके सामाजिक या राजनैतिक विचार क्या हैं, संसार को वह किन आँखों से देखता है, उसके आदर्श क्या हैं, यह सब चरित्रों द्वारा हमें मालूम होता है। चरित्रों ही से हम लेखक के अंतस्तल का अध्ययन कर सकते हैं, क्योंकि उसके चरित्र उसके प्रतिबिम्ब होते हैं। चरित्र के सजीव और स्वभाविक बनाने के लिए यह ज़रूरी नहीं कि वह निर्दोष और निष्कलंक हो। ऐसा चरित्र मनुष्य नहीं देवता होकर रह जाता है। हम फिर उसे आलोचना की मानवी तराजू पर नहीं तौलते, वह आलोचना के क्षेत्र के बाहर हो जाता है। चरित्र वही सुन्दर और आकर्षक होता है जिस में गुण और दोष दोनों ही हों, जिसकी जगह पाठक अपने को रख सके, जिसे वह अपना ही सा एक मनुष्य समझ सके। हमें केवल उसके कृत्य ही दिखा कर संतुष्ट न हो जाना चाहिए। यह तो उसका वाह्य रूप ही होगा। हमें उसके हृदय के अन्दर पैठने और उसके कृत्यों के उद्गम की खोज लगानी चाहिए, हाँ यह उत्तम है कि आप शब्दों में उसकी व्याख्या न करके, केवल संकेतों द्वारा उसका परिचय दे दें। उदाहरणार्थ वियोग व्यथित मनुष्य के वियोग की दशा बयान करने की जगह यदि आप दो चार वाक्यों में उसकी अंतरिक वेदना, विराग, नैराश्य का संकेत कर सकें तो बहुत ही सुन्दर हो। वह सिनेमा का बड़ा शौक़ीन है, उस दिन भी सिनेमा देखने आता है, पर आधे रास्ते से लौट आता है। इतने संकेत से आप उसकी मानसिक विषमता दिखाने में जितने सफल होंगे उतना पृष्ठों के रँगने पर भी नहीं हो सकते। समस्या हमारे चरित्रों

को आकर्षक बना देती है। जिस कहानी में कोई समस्या आप ला सकें —चाहे वह कैसी ही क्यों न हो, मसलन एक अधेड़ मनुष्य जो निस्सन्तान है पर बहुत बड़ी संपत्ति का अधिकारी है एक स्त्री के मर जाने पर विवाह करने के विषय में क्या फ़ैसला करे। उसकी सुबुद्धि कहती है संपति किसी धर्म कार्य में लगा दो और निर्द्वन्द जीवन व्यतीत करो ममत्व विवाह की ओर खींचता है। ऐसी सैकड़ों समस्याओं की कल्पना की जा सकती है। समस्याओं में आप को संघर्ष दिखाने का अवसर मिलता है जिस से कथा में जान पड़ जाती है। मगर यहां भी संकेत का ही आश्रय लेना रुचिकर होगा। अच्छे चरित्र चित्रण के लिये अच्छा निरीक्षण (observation) अनिवार्य है। कभी कभी बड़े ग़ुस्सेवर मनुष्य बहुत ही सहृदय देखे जाते हैं। बड़े बड़े नामवर लोग जिनकी हम और आप माला जपते हैं अपने नौकरों से पशुओं का-सा व्यवहार करते हैं। एक बड़े फ़िलासोफ़र का कथन है कि चरित्र की कुंजी हमारे महान कृत्य नहीं, छोटे छोटे काम हैं। लेखक को कभी सहानुभूति-शून्य न होना चाहिए। नीच से नीच प्राणी के लिए भी उसके हृदय में सहानुभूति होनी चाहिए। बहुत से आदमी मजबूर हो कर नीच हो जाते हैं। अपनी आत्म रक्षा के लिए नीच बनना पड़ता है, और आत्म रक्षा जीवन का प्रधान सत्य है। घोर दुश्चरित्रों में भी आप को अकसर मनुष्यता की झलक मिलेगी।

बहुधा थोड़ी सी जानकारी रखने वाले आलोचक चट पट यह फ़तवा दे दिया करते हैं कि यह चरित्र स्वभाविक नहीं, या ऐसा नहीं हो

सकता। यदि आप के चरित्र अवलोकन पर आश्रित हैं तो आलोचकों की आपको परवा न करनी चाहिए। यह लोग भूल जाते हैं कि सत्य कथा से कहीं ज्यादा विचित्र हुआ करता है। क्या यह सम्भव नहीं कि जो बात हमने नहीं देखी और भी किसी ने न देखी हो ?

हिन्दी में आलोचकों का बड़ा अभाव है और इस अभाव से साहित्य को बड़ी क्षति पहुँच रही है। आलोचना एकांगी नहीं, गुण, दोष विवेचनात्मक और उसके साथ ही साहित्य-तत्व पर दृष्टि रखकर की जानी चाहिए। जिस भाषा में ऐसे स्वेच्छाचारी आलोचक मौजूद हैं जिन्हें रंग-भूमि को वैनिटी फेयर का, कायाकल्प को एटरनल सिटी का, और प्रेमाश्रम को रेजरेकशन का छायारूप लिखते संकोच नहीं होता और उनकी इस धृष्टता पर भी हिन्दी का रसिक संसार मौन धारण किए रहता है, बल्कि दिल में खुश होता है कि महाशय की कैसी मिट्टी ख़राब की गई है, उस भाषा के भविष्य का ईश्वर ही मालिक है। अभी एक महाशय ने सुधा में मेरी एक कहानी 'कौशल' और मोपांसा की कहानी 'नेकलेस' में सादृश्य दिखाकर यह लक्ष्य किया है कि कौशल उस नेकलेस कहानी का छायारूप है। कौशल और नेकलेस में उतना ही अंतर है जितना सियाह और सुर्ख़ में हैं। हां, यह अनुरूपता अवश्य है कि दोनों ही रंग हैं। नेकलेस का उद्देश्य अलग, आदर्श अलग, चरित्र अलग, उच्च कोटि की कहानी है। कौशल एक साधारण घटना है जो एक आभूषण-लोलुप स्त्री अपने पति से एक गहना ऐंठने के लिये करती है।

प्रिय बंधुओ, मैं अब आप का समय न लूँगा। हिन्दी साहित्य अभी बाल्यावस्था में हैं। यहाँ अपने सेवियों के लिये अभी रूखी रोटी-दाल भी नहीं, चना-चबैना भी नहीं, केवल राम राम है। इसलिए यदि आप जीवन के बहुव्यय पूर्ण आदर्श लेकर इस क्षेत्र में आवेंगे तो आपको कष्ट होगा। दो चार साल की उम्मेदवारी के लिये तैयार होकर आइए, बल्कि शायद इससे भी ज्यादा, तब शायद आपके लिये द्वार खुल सके। हममें कितने ही ऐसे महाशय हैं जिन्हें क़लम घिसते पूरी उम्र गुज़र गई, लेकिन वह क़लम के भरोसे बैठने में समर्थ नहीं हुए। प्रकाशकों पर गुस्सा जताना व्यर्थ है। बहुत कम प्रकाशक हैं जिन्होंने नवीन साहित्य का व्यवसाय करके धन-संचय कर लिया हो। हम तो कितनों ही को जानते हैं जिन्होंने घर की सम्पति गँवा दी और अब कुबेरनाथ बने बैठे हैं। सम्पादकों पर भी न बिगड़िए क्योंकि ऐसी बहुत कम पत्रिकाएँ हैं जो घाटे पर न चल रही हों। स्थिति बड़ी शोचनीय है। मगर इसका सुधार साहित्य-सेवियों के हाथ में हैं इसमें सन्देह की गुंजाइश नहीं। हाँ, पहले हमें अपना आदर्श ऊँचा करना चाहिए।

गल्प माला

माता और मातृ-भूमि

(१)

काबुल शहर जहाँ खतम होता है उससे कोई एक आधे मील चलकर जहूरी फ़िर्क़े की एक छोटी सी बस्ती है। जहूरियों की क़ौम आम तौर से अंगूरों का रोजगार करती है। कुछ लोग फ़ौज में भी नौकरी करते हैं। लड़ने-भिड़ने का माद्दा तो हर अफ़गानिस्तानी में रहता है।

इसी बस्ती के एक किनारे पर एक छोटे से मकान में उमर और उसकी माँ रहते थे। उमर के पिता फ़ौज ही में नौकर थे। वे उम्र भर बड़ी वफ़ादारी से काम करके एक लड़ाई में मारे गये। अफ़ग़ान सरकार उनकी सेवाओं से प्रसन्न थी। वह बेवा अज़मतुन को बराबर गुज़र-बसर करने योग्य रक़म माहवारी देती थी। इसी से घर का काम चलता था।

अज़मतुन थोड़ा-बहुत पढ़ी लिखी थी। जब उमर के पिता की मृत्यु हुई, वह बहुत छोटा था। जब कुछ बड़ा हुआ, उसके

पड़ोसियों ने उसे अंगूर के रोज़गार में लगा दिया। कुछ बरसों तक वह उसमें रहा। अज़मतुन को यह बात कभी अच्छी न लगी। वह अपने लड़के को पढ़ाना-लिखाना चाहती थी। पर अफ़ग़ानिस्तान में जो स्कूल थे उनमें अमीरों के ही लड़के पढ़ सकते थे। उन्हीं का पढ़ना ज़रूरी समझा जाता था। सभी पढ़ लेंगे तो पढ़ने की क़द्र ही क्या रह जायगी? नीची क़ौमों के लोग पढ़ लिख लेंगे तो नीचे काम फिर कौन करेगा? ऐसे ऐसे विचार फैले थे। अपने देश में भी तो ऐसी ऐसी कहावतें हैं; सभी कुत्ते बनारस चले जायँगे तो पत्तल कौन चाटेगा? ज़हूरियों की क़ौम एक नीची क़ौम समझी जाती थी। उनके लिये पढ़ने में निमाज़ और लिखने में मामूली जोड़, बाक़ी, गुणा, भाग, काफ़ी समझा जाता था और इसके लिये किसी उस्ताद या मदरसे की ज़रूरत क्या थी? हर बाप अपने लड़के को यह सिखा सकता था।

परन्तु अज़मतुन की इच्छा पूर्ण होने वाली थी। तख्त पर बैठने के कुछ ही बरसों के अन्दर सरदार अमानुल्ला खाँ ने बहुत से स्कूल खुलवाये, और इस बात की मुनादी करादी कि, सब लोग, चाहे वे नीची क़ौमों के हों या ऊँची कौमों के, रईस हों या ग़रीब, इन स्कूलों में पढ़ सकते हैं। ग़रीबों को बिना फ़ीस के भी शिक्षा देने का प्रबन्ध किया गया। अज़मतुन ने ज़रा भी देर न की। उमर को अंगूर के रोज़गार से निकाल लिया।

उसका जी पहले से भी उसमें न लगता था। काबुल के एक स्कूल में भरती करा दिया। पास-पड़ोस के लोगों को अज़मतुन का यह काम अच्छा न लगा। औरतें कहतीं, 'ख़ानदान में किसी ने पढ़ा है कि तुम्हारा ही लड़का चला पढ़ने।' कोई कोई ताने मारतीं, 'अरे भाई माँ पढ़ी है, बाप दादे बे-पढ़े थे तो क्या हुआ।' कोई कुछ कहता, कोई कुछ सुनाता, कोई डर-वाता। पहले-पहल अपने देश में भी तो जब सभी को पढ़ने का बराबर अधिकार दिया गया था, इसी तरह की बातें होती थीं। गाँवों में तो अब तक होती हैं। लोग अज़मतुन को धमकाते कि कोई उसके लड़के की शादी न करेगा, वह फ़िर्क़े से निकाल दिया जायगा। पर उसे तो इस समय उसके शिक्षा की ही चिन्ता थी। वह इन बातों से ज़रा भी न डरी। अपने मन का ही कर डाला। उमर रोज़ स्कूल जाने लगा। हर साल पास होता। हर साल खेल-कूद में भी उसे तमग़े और इनाम मिलते। अज़मतुन बड़ी खुश रहती। उमर अपनी माता को हृदय से धन्यवाद देता कि उसने उसे पढ़ने-लिखने में लगाया नहीं तो उसकी सारी ज़िन्दगी बर्बाद हो जाती।

(२)

उमर की अवस्था इस समय कोई बीस, इक्कीस वर्ष की हो गई थी। अफ़ग़ानों में प्रायः सत्रह, अठारह वर्ष के लड़कों का

विवाह हो जाता है, पर उमर अभी तक अविवाहित था। इसका कारण यह नहीं था कि लोग एक पढ़े-लिखे जहूरी के साथ अपनी लड़की का ब्याह नहीं करना चाहते थे बल्कि उमर स्वयं अब एक अनपढ़ी लड़की से ब्याह करना नहीं चाहता था। उसकी माँ ने भी उसे कभी विवाह करने के लिये मजबूर न किया। वह हिन्दुस्तान की उन मूर्ख माताओं के समान न थी, जिनके जीवन का मानो ध्येय ही यह होता है कि वे बेटे का विवाह देख लें, चाहे बेटे का इस विवाह के कारण सर्वनाश ही क्यों न होता हो!

अज़मतुन की उम्र अब क़रीब साठ के हो गई थी। अब उसका स्वास्थ्य बिगड़ने लगा। उसके पैरों में एक ऐसा दर्द उठना आरम्भ हुआ कि उसका चलना-फिरना कठिन हो गया। हालत दिन-बदिन ख़राब ही होती गई। कुछ दिनों में यह हाल हो गया कि बिना किसी की सहायता न उठ सकती थी, न बैठ सकती थी। उमर मिडिल पास हो चुका था। माता की दशा को देख कर उसने सोचा कि अब उसका घर पर रहना ही बहुत ज़रूरी है। उसने स्कूल छोड़ दिया और घर पर रह कर माता की सेवा सुश्रूषा करने लगा। उमर माता की सेवा में बड़ा आनन्द पाता। उनको हर तरह से आराम पहुँचाने का सदा प्रयत्न किया करता। दवा-दारू करने से और

सब हालतें तो सुधर गईं, पर पैर की तकलीफ़ दूर न हुई और यही सब से बड़ी तकलीफ़ थी।

उमर को स्कूल छोड़े क़रीब दो ही तीन मास हुए होंगे जब अफ़ग़ानिस्तान में क्रान्ति आरम्भ हुई। अमानुल्ला के सुधारों का मौलवी मुल्लाओं ने विरोध करना आरम्भ किया। उनके स्त्री सम्बन्धी तथा अन्य सुधारों को इस्लाम धर्म्म के प्रतिकूल बतलाया जाने लगा। अमानुल्ला ने पहले तो इस विरोध की कुछ भी परवाह न की। पर जब मुल्लाओं ने उन्हें खुल्लमखुल्ला काफ़िर कहना आरम्भ किया और उनके सारे परिश्रम को मिट्टी में मिलाने को ही उतारू हो गये, उन्होंने दो एक को प्राण दण्ड भी दिया। इन धर्म्म के ठेकेदारों ने दीन के दीवाने, मिथ्यान्ध विश्वासी और केवल आडम्बर-मात्र को धर्म्म समझने वाले मुसल्मानों को भड़काना आरम्भ कर दिया। छिपे छिपे हर जगह फ़तवे भेज दिये कि अमानुल्ला काफ़िर है और अफ़ग़ानिस्तान से इस्लाम की हस्ती मिटाना चाहता है। अफ़ग़ानिस्तान का एक बहुत बड़ा भाग अमानुल्ला का विरोधी बन बैठा। फल यह हुआ कि एक दिन एकाएक काबुल घेर लिया गया और अमानुल्ला को राजमहल छोड़ कर क़िले में शरण लेनी पड़ी। परन्तु थोड़े दिनों में क़िला भी छोड़ना पड़ा। राजधानी हाथ से निकल गई। कुछ स्वामि-भक्त फ़ौजों, फ़िर्कों और अफ़ग़ानिस्तान

के कुछ नवयुवकों ने अमानुल्ला का साथ देने का वादा किया। इन्हीं की सहायता से वे लड़ने को तैय्यार हुए।

(३)

अज़मतुन अमानुल्ला के सुधारों को बड़े आदर की दृष्टि से देखती थी। वह कहा करती, 'अमानुल्ला आदमी नहीं कोई फ़रिश्ता है जो अफ़ग़ान क़ौम को एक दिन तरक्क़ी के एक बुलन्द दर्जे पर पहुँचा देगा।' जब उसने अमानुल्ला के इस तरह राजधानी से भगाये जाने का समाचार सुना, उसे बड़ा आश्चर्य हुआ। दो तीन दिन तक मारे शोक के उसने खाना न खाया। बिस्तर पर पड़े पड़े यही प्रार्थना करती रही कि 'ऐ ख़ुदा, अमानुल्ला के दुश्मनों को जल्द बर्बाद करके उसे फ़तहयाबी दे।' उसे पूरा विश्वास था कि बहुत जल्द अफ़ग़ानिस्तानी अपनी ग़लती को समझ जायँगे और अमानुल्ला को बुला कर तख़्त पर बिठावेंगे और उनके हुक्म को मानेंगे।

पर होने वाला कुछ और ही था। दिन बीतते गये। अज़मतुन को रोज़ उमर अख़बार लाकर सुनाता। पढ़ने से यही मालूम होता कि अमानुल्ला की शक्ति दिन-दिन घटती ही जाती है। जहां अमानुल्ला की हार का समाचार अज़मतुन सुनती, रो पड़ती, उसे क्रोध आजाता, उसका चेहरा लाल हो जाता वह दांत पीसने लगती। अगर अज़मतुन के अन्दर युवावस्था की शक्ति मौजूद

होती तो क्या आश्चर्य्य था यदि अज़मतुन स्वयं हथियार हाथ में लेकर दुश्मनों से लड़ने जाती और एक अफ़ग़ानिस्तानी, जोन आफ़ आर्क, का उदाहरण उपस्थित करती ? अज़मतन दिन रात चिन्ता-मग्न रहने लगी।

उमर अमानुल्ला के स्कूलों में बरसों पढ़ चुका था। इन स्कूलों में कोरी पढ़ाई ही नहीं होती थी। बल्कि हर विद्यार्थी को यह सिखाया जाता था कि वह राष्ट्रीयता को अपने हृदय में सब से ऊँचा स्थान दे और देश की उन्नति के लिये सदा प्रयत्नशील रहे। सामाजिक कुरीतियों को दूर करो और मिथ्यान्ध विश्वासों के प्रतिकूल क्रान्ति मचाओ। विद्यार्थियों की हर कापी पर यह लिखा रहता था 'मादरे अफ़ग़ानिस्तान अपने हर बच्चे से यह उम्मीद रखती है कि वह उसके ख़तरों में दिलो जान से उसकी मदद करेगा।' अपने ग़ुलाम देश की तरह वहाँ यह नहीं कहा जाता था, कि बच्चे देश को संकटों में देख कर अपनी आँखों के सामने किताबों के पर्दे खींच लिया करें। अफ़ग़ानिस्तान पर इस समय संकट आ गया था। उमर ने देखा कि मां-अफ़ग़ानिस्तान का अञ्चल चारों ओर से खींचा जा रहा है उसकी दुर्दशा हो रही है, वह बिलख-बिलख कर रो रही है और आशा-पूर्ण नयनों से अपने नवयुवकों की ओर देख रही है। मां पूछती,–'उमर' क्या तुम न आओगे'? उमर क्या उत्तर देता? जन्म-

दात्री माता के प्रति भी उसका कर्त्तव्य था। उसकी इच्छा होती 'मैं दो उमर हो जाऊँ, एक से इस मां की सेवा करूँ और एक से उस मां की।' उसका चित्त उद्विग्न-सा रहने लगा। रात को उसे नींद न आती। चारपाई पर पड़े पड़े ज़ोरों से हाथ चलाने लगता मानों तलवार चला रहा है। सोते सोते चिल्ला पड़ता— 'ये दुश्मन आये—वो फ़ौज आई—मारो—काटो।' अज़मतुन जाग पड़ती। पूछती, 'क्या ख़्वाब देखते थे बेटा?' उमर कह देता, 'कुछ नहीं मां, तुम्हारी तबियत तो अच्छी है, कुछ चाहिये?' अज़मतुन 'कुछ नहीं' कहके अनेक विचारों में मग्न हो जाती।

(४)

'अख़बार लोगे साहब, ताज़े अख़बार'

उमर ने झट दौड़ कर 'तरक्क़ी' अख़बार ख़रीदा। यह अमानुल्ला पत्त का अख़बार था। मां के पास पहुँचा। मां बिस्तर पर बैठी थी ऊपर ही मोटे मोटे हरूफ़ों में छपा था, 'नौजवानान् अफ़ग़ानिस्तान से अमानुल्ला ख़ां की अपील'। उमर ने उसे देखा, बिना पढ़े ही पेज उलट दिया। दूसरे पेज पर पढ़ने लगा! मां ने टोका, 'बेटा, उन मोटे हरूफ़ों में क्या 'अपील' छपी है'?

उमर जो अपनी मां से छिपाना चाहता था वही उसे सुनाना पड़ा। बड़ी दर्द-भरी अपील थी। मालूम होता था कि उसका

एक एक अक्षर अमानुल्ला के आंसुओं से लिखा गया था। पढ़ते पढ़ते उमर का गला रुँध गया। किसी तरह ख़तम किया। अज़मतुन बीच बीच में कई बार सर हिलाती गई और हार जीत की ख़बरें पढ़ी गईं। अज़मतुन की आँखों में आँसू भर आये पर आज उसके चेहरे पर एक अनोखी प्रसन्नता थी! न आज उसको क्रोध आया, न उसकी आँखें लाल हुईं, और न उसने होठ दबाये। उमर से बोली, 'उठो, बेटा खाना लाओ।' उमर ने उसके लिये खाना परोस कर चारपाई पर रख दिया। अपने लिये नीचे परोस कर रक्खा। मां ने कहा, 'बेटा आज मुझे भूख कम है, आ, मेरे साथ ही खाले, नहीं तो बहुत सा-खाना ख़राब होगा। अपना हिस्सा शाम के लिये रख दे।' मां बेटे एक साथ खाना खाने बैठ गये। मां बड़ी प्रसन्न हुई।

जब दोनों खा चुके अज़मतुन बोली, 'बेटा, आज हकीम साहब के यहाँ जाना होगा, ज़रा ऐसे वक्त से जाना जिसमें चिराग़ जलने के पेश्तर ही लौट आवो।' उमर ने माता की आज्ञा का उलङ्घन करना तो सीखा ही न था। फौरन् बोल उठा, 'अच्छा मां, अभी जाता हूँ, क्या हाल कह दूंगा?'

'कुछ सेहत है। अभी क्यों जाओगे, थोड़ी देर आराम कर लो, अभी ही खाना खाया है।'

'नहीं मां, मैं अभी जाता हूँ, मुझे कोई तक़लीफ़ न होगी, पानी तुम्हारे सिरहाने रख दिया है। और कुछ चाहिये? जहाँ तक होगा जल्द ही आऊँगा।'

'बेटा, तूने मेरी बड़ी खिदमत की; ख़ुदा तुझे सलामत रक्खे' यह कहते हुए अज़मतुन ने उसकी पीठ पर हाथ फेर दिया। उमर जल्दी कपड़े पहन कर चल दिया। मां बड़ी देर तक बेटे की तरफ़ देखती रही यहाँ तक कि वह आँखों से ओझल हो गया।

उमर का ओझल होना था कि अज़मतुन चारपाई पर से उतर पड़ी। हफ़्तों से वह अपने आप न उठ पाती थी लेकिन आज उसे न जाने कहाँ से इतनी ताक़त आगई। दीवार पकड़ कर उमर की किताबों की अलमारी तक पहुँची। एक कापी से एक पेज काग़ज फाड़ा, क़लम दावात उठाई। फिर चारपाई पर आई; और बैठ कर कुछ लिखने लगी। उसके हाथ काँप रहे थे। जल्दी लिखना खतम करके उसने क़ाग़ज को ठीक दरवाज़े के सामने, उसका एक कोना एक किताब से दबा कर रख दिया। जल्दी से उठी किवाड़ों को भीतर से बन्द कर दिया।

(५)

कोई चार साढ़े चार का वक्त होगा। उमर थका माँदा दवायें लिये हुए घर आ पहुँचा। दूर ही से देख रहा था कि

दरवाज़ा बन्द है। समझा, हवा से बन्द हो गया होगा। मगर जब उसने दरवाज़े पर हाथ रख कर उसे ढकेला तो मालूम हुआ कि भीतर से किसी ने बन्द कर लिया है। उमर बड़ा हैरान हुआ—मां कैसे उठी होगी! कौन आया होगा? बुलाया, 'मां—मां—और कोई है?' कोई आवाज़ न आई। फिर बुलाया। और ज़ोर से बुलाया, 'मां—कौन है भीतर? खोलो जल्दी।'

उमर ने दवायें दरवाज़े पर रख दीं। मकान नीचा था ही। बग़ल की दीवारें ख़ास तौर से नीची थीं। उमर कूद-फाँद में एक था। झट दीवार को कूद गया। आँगन में पहुँचा। माँ—माँ—कहता हुआ बाहर वाले कमरे में झपटा इसी में अज़मतुन की चारपाई रहा करती थी। कमरे में अंधेरा था। बाहर का दरवाज़ा खोला। चारपाई पर नज़र गई कि चिल्ला पड़ा:—

अरे, ख़ून—माँ माँ—अरे छुरी—गले में—अरे माँ—किसने—अरे यह तो अब्बा वाली—किसने भोंका—माँ माँ—खुद क्या—अरे—क्यों अरे माँ—अं—अं—आँ—

एकाएक काग़ज पर दृष्टि पड़ी

'अरे यह तो माँ का लिखा······'

काग़ज को उठा लिया। पढ़ने लगा। आँखों में आँसू भर भर आते। उमर उनको पोंछता जाता, पढ़ता जाता।

"प्यारे बेटा उमर, सलामत रहो। मैंने ख़ुद-कुशी कर ली है। मुझे मरने में बड़ी ख़ुशी हुई। रंज सिर्फ़ इस बात का था कि तुम्हें अब न देखूँगी। जब मादरे अफ़ग़ानिस्तान को उसके बच्चे बच्चे की ज़रूरत है मैं तुम्हें अपने पास रोकना नहीं चाहती। क्या अफ़ग़ानिस्तान मेरी माँ नहीं है ? उसके लिये मैं क्या कर सकती थी ? मैं सिर्फ़ तुम्हें उसे दे सकती थी। मैं फ़िज़ूल जीकर तुम्हें रोक रही थी। इसी से मैंने अपनी जान दी। मेरे मरने से कुछ नुक़सान न होगा। प्यारे उमर, तुम मेरे मरने का अफ़सोस न करना। तुम्हें अब मैं एक बड़ी माँ की गोद में सौंप रही हूँ। तुम अब उस माँ की ख़िदमत करना। ख़ुदावन्द क़रीम तुम्हारे बाज़ुओं में ताक़त दे कि तुम अफ़ग़ानिस्तान के दुश्मनों को जल्दी हराओ। अल्ला तुमको उमरदराज़ करे। मैं तुम्हें दुआ देती हूँ।"

पत्र को एक बार पढ़ कर, उमर फिर उसे पढ़ने लगा।

प्रायश्चित्त

आज व्रजमोहन तीन साल के पश्चात् इङ्गलैण्ड से लौटकर अपने घर आ रहे हैं। सरोज कार्यों में फँसी रहने के कारण उनका स्वागत करने बम्बई न जा सकी। पत्र द्वारा उसने इसके लिए क्षमा माँग ली है। उसकी प्रसन्नता की कोई सीमा नहीं थी। आने के एक दिन पहले ही से उसने अनाथों को भोजन दिया। भिखारियों तथा दरिद्रों को अन्न-वस्त्र दान किये। सब से यह प्रार्थना करने के लिये कहा कि शीघ्र ही वह समय आवे जब व्रजमोहन घर पर पधारें। अन्त में वह समय आ ही गया। घर के सामने एक मोटर खड़ी हो गई। दास दासियां सब अपने मालिक का स्वागत करने बाहर आकर खड़ी हो गईं। सरोज ने व्रजमोहन को मोटर पर से उतरते देखा। अंगरेजी ढंग के वस्त्र पहिने थे। हाथ में हैट विराजमान था, पूरे जैण्टलमैन बने हुये थे। उनको देखकर एक अंगरेज पुरुष की स्मृति हो आती थी। अन्दर आकर इतने

दिनों के बिछुड़े हुये प्राणी आज सहर्ष फिर परस्पर मिले। दोनों को अपार हर्ष था। सरोज ने अनेक प्रकार से उनका स्वागत किया। नाना प्रकार के भोज्य पदार्थ अपने करों से बनाकर खिलाये। ब्रजमोहन ने सरोज से अपनी यात्रा वर्णन की। इङ्गलैण्ड में वे किस प्रकार रहे आदि सब बातें बताकर वे अपने इष्ट-मित्रों से मिलने चले गये।

आने के उपलक्ष में दो दिन तक पार्टी होती रही। दोनों को आपस में बोलने का अवकाश ही न मिला। तीसरे दिन दोपहर को भोजन करने के बाद ब्रजमोहन सरोज के कमरे में गये। उनको प्रत्येक वस्तु नई ही दिखाई देती थी। पर्दे भी खद्दर के, मेज़ पर तथा पलंग पर भी खद्दर ही दृष्टिगोचर होता था। सरोज को बुलाया। वह भी खद्दर की सादी धोती पहिने थी। यह सब देखकर उनको आश्चर्य हुआ, पूछने लगे, "सरोज, तुम आज मेरे सामने सादे कपड़े क्यों पहिन कर आई हो? ऐसा तो पहिले न करती थीं?"

सरोज—"यहां पर महात्मा गांधी जी आये थे उन्होंने अपने व्याख्यान में देश की दुर्दशा बताते हुये कहा कि भारत की उन्नति के लिये चर्खा तथा खादी ही अति आवश्यक है। उसी दिन से मैंने भी खद्दर पहिनना आरम्भ कर दिया है।'

ब्रजमोहन—'तब तो तुम उनकी बड़ी भक्त बन गई हो!'

सरोज—'इसमें भक्त की क्या बात है ? मैंने इस विषय पर कई दिन तक विचार किया और गान्धी जी की बात ठीक प्रतीत हुई। इसलिये मैंने विदेशी वस्त्र त्याग दिये।

ब्रज०—उन साड़ियों का क्या हुआ ?

सरो०—'यहाँ नगर में अनेक सज्जनों ने विदेशी वस्त्रों की होली जलाई थी। मैंने भी अपने कपड़े जला दिये। जिन मनुष्यों ने ऐसा किया उनका समस्त जनता ने स्वागत किया तथा प्रशंसा की।'

ब्रज०—'अच्छा अब समझ में आया कि तुमने क्यों वस्त्र जला दिये और खद्दर पहिनना स्वीकार किया।'

सरो०—'क्या समझ में आया ?'

ब्रज०—'यही कि ऐसा करने से तुम्हारी प्रशंसा होगी।'

सरो०—'वाह, आप मुझे क्या समझते हैं। मैं ऐसी नीच प्रकृति की नहीं हूँ ?'

ब्रज०—'इसमें नीच प्रकृति की क्या बात है ? ऐसा तो अधिक मनुष्य करते हैं। अनेक जेल जाने के लिये उद्यत रहते हैं केवल नाम के लिये। चाहे उनमें देश-भक्ति की मात्रा तनिक भी न हो।'

सरो०—'क्या आप ने मुझे भी ऐसा समझ लिया है ? मैं तो हृदय से देश की स्वतन्त्रता चाहती हूँ।'

ब्रज०—'पहिले तो ऐसा न चाहती थीं।'

सरो०—'क्या मनुष्य सदा एक सा ही रहता है? पहिले मैं छोटी थी ऐसी बातों को समझती भी नहीं थी।'

ब्रज०—'अच्छा अब तुम समझदार हो गई हो। तो क्या तुमने यथार्थ में खद्दर पहिनने का प्रण कर लिया है?'

सरो०—'नहीं तो क्या आप इसे असत्य समझ रहे हैं?'

ब्रज०—'हां मैं तो इसमें विश्वास न करता था। कब से यह प्रण किया है?'

सरो०—'अभी एक ही मास हुआ है।'

ब्रज०—'पर तुमने मेरी आज्ञा तो नहीं ली।'

सरो०—'हां, यह अपराध हो गया। समय बहुत कम था मैं शीघ्र ही विदेशी वस्त्रों को छोड़ देना चाहती थी इसलिये आज्ञा न ले सकी और यह भी सोचा कि इसमें कोई दोष भी नहीं है। आप बुरा न मानेंगे।'

ब्रज०—'क्या तुमको यह नहीं मालूम कि मैं खद्दर का घोर विरोधी हूँ। चर्खे के स्थान में यदि कारखाने खोले जायँ तो देश का अधिक लाभ होगा। खद्दर कितना महँगा भी मिलता है, केवल धनाढ्य ही मोल ले सकते हैं।'

सरोज०—'कारखाने के लिये मशीन तो विदेश से ही आयेंगी। बात वही हो जायगी। अभी खद्दर बहुत महँगा मिलता है

पर जब इस का प्रचार अधिक हो जायगा तब सस्ता मिलने लगेगा। मैंने भी चर्खा चलाना आरम्भ कर दिया है। यदि प्रत्येक व्यक्ति चर्खा चला कर अपने लिये सूत कात लिया करे तो भारत का कितना रुपया विदेश से बच जाया करे!

ब्रज०—'तुम तो बड़ी राष्ट्र-सेवी बन गई हो।'

सरो०—'मैं चाहती हूँ कि आप भी खद्दर पहिन और हम दोनों मिलकर भारत की सेवा करें।'

ब्रज०—'रहने दो, तुम ही सेवा करो। मुझे इसकी आवश्यकता नहीं है। अभी थोड़े ही दिन यहाँ आये हुये हैं पर मेरा मन यहाँ से ऊब गया है।'

वे इतना ही कहने पाये थे कि सरोज की एक सहेली आई और उससे सभा में चलने के लिये कहा। सरोज कपड़े पहिन कर तथा ब्रज मोहन से आज्ञा लेकर चली गई।

× × ×

असहयोग आन्दोलन को कई साल हो गये। उन दिनों भारत की जनता में खलबली पड़ गई थी। उनकी रुचि देश की स्वतन्त्रता की ओर अग्रसर हो गई थी। जो मनुष्य खद्दर के नाम से घृणा करते थे वे ही आज उसको सहर्ष धारण करने लगे। खद्दर-धारी का ही सभ्य समाज आदर करता था।

जनता जेल-यात्रा को ही तीर्थ-यात्रा और जेल को स्वर्गधाम मानती थी। पर बरसाती नदी के समान मनुष्यों का उत्साह कुछ ही वर्षों में कम हो गया।

सरोज की अवस्था उस समय १३ वर्ष की थी। हाल में ही उसका विवाह हुआ था। ससुराल में सिवाय उसके पति ब्रज मोहन के और कोई नहीं था। उसके पास पिता की अतुल संपत्ति थी। वे नये विचारों के मनुष्य थे। कभी देश के विषय में दो मिनट के लिये भी नहीं सोचते थे। एम० ए० पास करके वे इङ्गलैण्ड चले गये। सरोज यहीं पर विश्वासी अनुचरों के साथ रहने लगी। एक दिन नगर में गान्धी जी आये थे। उन्होंने भारत की दुर्दशा वर्णन की। सरोज भी वहीं थी। यह सब सुनकर उसको अति दुःख हुआ। घर आते ही उसने विदेशी वस्त्र त्याग दिये। खद्दर पहिनना स्वीकार कर लिया। नगर में जब विदेशी वस्त्रों की होली जलाई गई, उसने भी अपने वस्त्र जला दिये। मनुष्यों ने उसके साहस की सराहना की। उस दिन से वह राष्ट्र की सेवा करने को खड़ी हो गई। स्त्रियों की सभायें खोलीं, उनमें चर्खे का प्रचार करना आरम्भ कर दिया। पाठकों को विदित हो गया कि अब उसके पति ब्रज मोहन यहां आ गये हैं। और आज भी वह अपनी सहेली के साथ एक सभा में चली गई।

(२)

एक स्थान में हम दो विपरीत वस्तुएँ नहीं देखते। उनका एक साथ रहना असम्भव प्रतीत होता है। आम और इमली के फलों की प्राप्ति एक ही वृक्ष से करना आकाश से कुसुम चुनने के समान है। इसी प्रकार एक घर में दो विचारों के मनुष्यों का रहना भी असम्भव हो जाता है। ब्रज मोहन और सरोज के मतों में पृथ्वी आकाश का भेद था। एक पाश्चात्य सभ्यता के अनुगामी थे दूसरी भारत की प्राचीन सभ्यता को ही आदर्श मानती थीं। ब्रजमोहन सारे संसार को ही अपना समझते थे देश और विदेश का भाव न रखते थे। वे तो खद्दर पहिनने के पक्ष में न थे। परन्तु सरोज के विचार इसके प्रतिकूल थे। वह भारत को ही अपना मानती थी उसकी उन्नति तथा स्वतन्त्रता के लिये ही ईश्वर से प्रार्थना करती थी। कभी कभी दोनों में वाद-विवाद भी हो जाता था। सरोज सदा यही कहती कि यदि वास्तव में सब संसार अपना है तो क्यों एक जाति या एक देश अन्य जाति और देश पर अधिकार करता है, क्यों युद्ध में लाखों के प्राण जाते हैं?

ब्रजमोहन को इंगलैण्ड से लौटे कई महीने हो गये। उन की इच्छा थी कि वे एक उच्च पदाधिकारी हो जायें। रात दिन बड़े बड़े अंगरेज़ अफ़सरों से मिलते। उनके लिये भेंट भेजा करते।

उनको पार्टी दी जाती। सरोज को यह नितान्त बुरा लगता। वह इन सब चाटुकारिताओं की विरोधिनी थी। परन्तु कुछ कहने पर उसको उसके बदले में केवल कटु शब्द ही मिलते। ब्रज-मोहन का मन यहाँ नहीं लगता, रह रह कर इंगलैण्ड की याद आती है। बात बात पर इंगलैण्ड के ही प्रमाण देने लगते हैं। सरोज से दिन पर दिन चिढ़ते ही जाते हैं। पहिले तो वे चाहते थे कि वह उनके साथ सिनेमा आदि देखने जाया करे, पाश्चात्य सभ्यता से रहा करे परन्तु सरोज ने यह सब स्वीकार न किया। वह कहती कि जितना समय वहां नष्ट होगा उतना यदि भारत की उन्नति तथा दरिद्रों और अपाहिजों की सेवा में लगावे तो अति उत्तम हो।

एक दिन ब्रजमोहन "रीडिंग रूम" में बैठे हुये समाचार पत्र पढ़ रहे थे उसी समय दो लड़के एक मिट्टी का बर्तन लिये हुये दिखाई पड़े। उन्होंने पूछा, 'तुम कौन हो?'

एक लड़का—'बाबू जी हम राष्ट्रीय पाठशाला के विद्यार्थी हैं।' ब्रजमोहन "राष्ट्र" नाम से ही चिढ़ते थे, क्रोधित होकर पूछने लगे 'यहां क्यों आये हो?'

लड़का—आटा लेने।

ब्रज०—आटा लेने? क्या यहां आटा रख गये हो या तुमने मेरे घर को कोई दूकान समझ ली है?

लड़का—'नहीं बाबू जी। न हम आटा रख गये हैं और न घर को हमने दूकान ही समझ लिया है। हम लोग सप्ताह में एक दिन प्रत्येक घर से सात मुट्ठी आटा ले जाते हैं। यही हमारी जीविका है।'

ब्रजमोहन का हृदय दयालु भी नहीं था और दूसरे वे राष्ट्रीय स्कूल के विद्यार्थी थे इसलिये उन्होंने उन दोनों लड़कों को फटकार दिया, कहा, 'यहां आटा नहीं मिलेगा। भागो यहां से।'

वे विचारे क्या करते। चुपचाप चले गये। सरोज ने अन्दर से उनके चिल्लाने की आवाज़ सुनी। कमरे में आकर पूछा, क्या बात थी?

ब्रज०—'कुछ नहीं। राष्ट्रीय पाठशाला के दो लड़के आटा लेने आये थे।'

सरोज—'वे कहां गये?'

ब्रज०—'मैंने उनको भगा दिया कि हमारे यहां से आटा नहीं मिलने का।'

सरो०—(आश्चर्य से) 'क्यों, भगा क्यों दिया? उनको तो सदा आटा दिया जाता है।'

ब्रज०—'क्या कहा, क्या तुम सचमुच आटा देती हो?'

सरो०—'हाँ देती हूँ। इसमें आश्चर्य या दोष की क्या बात है? वे विचारे दरिद्र हैं। घर घर से आटा मांग कर ही अपना पालन करते हैं।'

ब्रज०—'अब उनको आटा कभी न देना। देखो, मैं तुम्हें बताये देता हूँ। मुझे यह सब अच्छा नहीं लगता मैं रात दिन अपनी नौकरी की ही चिन्ता करता हूँ। तुमको क्या है। घर में बैठी रहती हो। रुपये मिलने चाहिये और क्या चिन्ता। वे राष्ट्रीय विद्यार्थी हैं यदि हम उनकी सहायता करेंगे तो सरकार अभी से अलग कर देगी। फिर एक एक पैसे के लिये तरसेंगे। तभी तुमको अच्छा लगेगा।'

सरो०—'तुम ऐसी नौकरी क्यों नहीं छोड़ देते?'

ब्रज०—'और क्या, तुमसे और क्या आशा रक्खी जा सकती है। चाहती हो कि मैं दर दर का भिखारी बन जाऊँ।'

सरो०—'ऐसा क्यों कहते हो! भला, मैं आपकी अशुभ कामना कभी सोचती हूँ? मैं कभी नहीं चाहती कि आपको कष्ट उठाना पड़े। मैंने तो केवल इसलिये कहा था कि ऐसी नौकरी से क्या लाभ, जब हम अपने दरिद्र भाइयों की सहायता भी नहीं कर सकते?'

ब्रज०—'बस तुम अधिक तर्क-वितर्क न किया करो। मुझे तुम्हारे कोई कार्य्य पसन्द नहीं हैं' इतना कहते हुये वे क्रोध में कमरे से बाहर चले गये।

सरोज कुछ समय तो आश्चर्य्य से वहीं खड़ी रही। फिर उसको अपनी अवस्था पर बहुत रोना आया। घण्टों रोती

रही। बाद को उठी और चर्खा आदि सब उठा कर रख दिये। और चुपचाप पलंग पर पड़ गई।

इसी प्रकार रात दिन घर में अशान्ति ही रहती थी सरोज यद्यपि ब्रजमोहन को प्रसन्न करने के लिये अपनी इच्छाओं का भी दमन करती थी। परन्तु वे किसी प्रकार भी हर्षित न होते थे। दिन पर दिन और भी क्रोधी स्वभाव के हो गये थे। जिसने कभी एक भी कटु शब्द नहीं सुना था वही सरोज अब रात दिन डाँट फटकार सुना करती। यद्यपि उसने सब सभाओं आदि में जाना छोड़ दिया, चर्खा कभी भूल कर भी नहीं चलाती, परन्तु तो भी वह उनको प्रसन्न न कर सकी।

(३)

एक दिन प्रातःकाल सरोज चाय आदि लेकर ब्रजमोहन के कमरे में गई। वहाँ देखा कि वे नहीं हैं। सोचा, सम्भवतः आज शीघ्र ही घूमने चले गये होंगे। उसने चाय वहीं रख दी और चली आई। १० बज गये। खाने का समय हो गया। वे अभी तक खाना खाने क्यों नहीं आये? सहसा सरोज का दिल धड़कने लगे। अशुभ-विचार मन में आने लगे। दौड़ कर कमरे में गई। वहाँ उनको न पाया। मेज़ पर चाय अभी तक रक्खी है। सरोज की समझ में कुछ न आया। इधर

उधर देखने लगी। एक पत्र उसने अपने नाम का देखा। पता ब्रजमोहन का ही लिखा मालूम पड़ता था। उसकी आँखों के नीचे अँधेरा छा गया। पत्र पढ़ते ही वह मूर्छित हो कर भूमि पर गिर पड़ी।

दासी बाहर कुछ काम कर रही थी। गिरने का शब्द सुन कर अन्दर आई। मालकिन को बेहोश देख कर उनको पलंग पर लिटाया। पानी आदि के छींटे उसके मुँह पर डाले। तब कहीं उसको होश आया। पत्र को देख कर फिर रोने लगी। पत्र ब्रजमोहन का ही लिखा था। उन्होंने लिखा कि वे अब यहां रहना नहीं चाहते। उनका मन नहीं लगता। वे इङ्गलैण्ड में ही रहेंगे। सरोज को पहिले से इसलिये नहीं बताया कि ऐसा करने से सम्भवतः वह उसके साथ चलने को उद्यत हो जाय। वे उसको नहीं ले जाना चाहते थे।

सरोज घण्टों तक रोती रही। अतीत के दृश्य एक एक करके उसके सामने दृष्टिगोचर होने लगे। सोचती कि 'हाय, मैंने उनके सुख के लिये सब कुछ त्याग दिया। अपने बचनों को भी तुच्छ समझती थी। चर्खा तथा राष्ट्र सेवा भी बन्द कर दी। तब भी मैं उनको अपना न सकी, न जाने कौन सी अज्ञात प्रेरणा उनको इंगलैण्ड से आकर्षित करती थी। हाय, वे मुझे छोड़कर चले गये। मैं किस प्रकार अकेली रहूँगी......'

(४)

इस घटना को हुये दो साल हो गये। पहिले तो सरोज ने ब्रजमोहन की बहुत खोज की। उनके लिये बहुत व्याकुल रहती परन्तु जब उसको यह सूचना मिली कि उन्होंने एक अंगरेज महिला से विवाह कर लिया है और वे अब इंगलैण्ड में ही रहेंगे, तब उसे बड़ी आत्म-ग्लानि हुई। उनकी चिन्ता करना उसने छोड़ दिया। सोचा कि वे वहां सकुशल रहते होंगे। यह सोचकर कि ईश्वर जो कुछ करता है अच्छा ही करता है, देश सेवा करने को उद्यत हो गई। दास दासियों को विदा कर दिया। केवल एक वृद्ध विश्वासी नौकर रख लिया। घर का आधे से अधिक भाग किराये पर उठा दिया, उसी की आय से अपना काम चलाती।

महात्मा गांधी जी ने फिर अपना वही पुराना राग अलापना आरम्भ कर दिया है। स्थान स्थान पर भ्रमण करते और खद्दर प्रचार के लिये रुपया एकत्रित करते हैं। असहयोग आन्दोलन के पश्चात् अब फिर जनता में भारत की स्वतन्त्रता के लिये उत्साह बढ़ता जाता है। सरोज भी देश की भली-भांति सेवा करती है। प्रति दिन सभायें करती है। स्त्रियों में खद्दर का प्रचार करती है। यहां पर भी गांधी जी आने वाले हैं। वह प्रत्येक घर में जा जा कर धन एकत्रित करने में तन मन धन लगाये हुये है।

एक दिन वह किसी सभा से लौट कर सायंकाल को घर लौट कर आई। देखा कि एक पत्र उसकी मेज़ पर पड़ा हुआ है। पता ब्रज मोहन का लिखा हुआ प्रतीत होता था। उस का दिल धड़कने लगा। काँपते हुये हाथों से पत्र खोला। पढ़ कर अति प्रसन्न हुई। ब्रजमोहन अब बम्बई आगये हैं। वहीं से वह पत्र लिखा है। उन्हों ने अपनी दशा वर्णन की है। किस प्रकार से एक अंगरेज़ महिला के प्रेम में फँस कर इङ्गलैण्ड गये। वहां विवाह किया। जब तक रुपया पास था तब तक तो वे सुखी रहे। तत्पश्चात् उन को दुःख से रहना पड़ा। वह महिला केवल धन की भूखी थी। कई हज़ार का ऋण हो गया। सारा सामान नीलाम हो गया। वह महिला उन को छोड़ कर कहीं और चली गई। बड़ी कठिनता से यहां तक आ सके हैं। भारतीय होने के कारण उन को कितना अनादर सहना पड़ा। ब्रजमोहन ने, यह भी लिखा कि वे शीघ्र ही घर आ कर भारत की सेवा करेंगे।

अस्तु! पत्र पढ़ कर सरोज को अपार हर्ष हुआ। उसे अपनी विजय पर प्रसन्नता थी। तीन साल पहिले भी ब्रजमोहन आज ही के दिन इंगलैण्ड से लौटे थे। तब वे उसके मत के विपरीत थे। आज वे उसके सहायक बन कर लौट रहे हैं।

दूसरे दिन प्रातःकाल सरोज रसोई घर में भोजन बना रही थी कि इतने में नौकर ने कहा कि 'मालकिन, मालिक आ गये'। सरोज दौड़ कर आँगन तक ही आ पाई थी कि ब्रज-मोहन ने उस के पैरों पर गिर कर क्षमा माँगी। उसने उनको उठा लिया। दोनो विरही कुछ देर तक रोते रहे। फिर सरोज ने कहा, 'आप पिछली बातों को भूल जाइये।'

ब्रज०—'सरोज, मैं अपने दुष्कर्म्मों का प्रायश्चित्त किस प्रकार करूं?'

सरोज—'गांधी जी आ रहे हैं। चलिये उनकी सेवा में जाकर भारत को स्वतन्त्र बनाने की चेष्टा करें।'

इतना कहते हुये सरोज ब्रजमोहन का हाथ पकड़ कर कमरे में लिवा ले गई।

माया

जेलखाने के अँधेरे कमरे में माया दोनो हाथों के बीच सर दबाये लेटी थी। रात्रि आधी से अधिक बीत चुकी थी; परन्तु उसे नींद कहाँ! आधे संसार के पुरुष गाढ़ी नींद में सो रहे थे शान्ति और नीरवता का चारों ओर राज्य था। कभी कभी जेल के घंटे की 'टन-टन' ध्वनि, पहरेदारों की पुकारें, पास के पीपल के वृक्षों पर से उल्लू की 'हू-हू' बोलियाँ और दूर के नाले से सियारों की आवाज़ें ही इस नीरवता को भंग करती थीं। माया के सामने भविष्य के फाँसी का भय अनेक साँपों के काटने से भी अधिक भय उत्पन्न कर रहा था। चार दिवस हुए उसे हाईकोर्ट से फाँसी की सज़ा हो गई, उसका जीवन भय की सामग्री हो गया, चिंता और निराशा के बादल छाये थे। सारी रात जेल के घंटों को गिन गिन कर और उल्लू की 'हू-हू' सुन कर बिता देती। उसकी आँखों के सामने फाँसी का फंदा दिखाई देता, भयभीत मस्तिष्क और कल्पना उसे फाँसी का पूरा चित्र सामने दिखा

देती, वह रस्से से लटके हुए तड़पते हुए मनुष्य की दशा देख चौंक कर घबड़ा जाती। छाती 'धक-धक' करने लगती और साँस भी ज़ोर से चलने लगती। चिंता और भय ही उसका दिन का भोजन और रात्रि की नींद थी। नेत्र लाल और चेहरा पीला पड़ गया था। शरीर मृत्यु-निकट तपेदिक के बीमार की भाँति कंकाल हो गया था।

एक परचा लिखा और फेंका कि :—

"प्रियतम, आपका मुझे इस कैदख़ाने से छुड़ाने में बड़ा उपकार होगा। आप और मैं सुख और स्वतंत्रता-पूर्वक आनन्द-मय संसार में जीवन व्यतीत करेंगे। हे हृदयेश्वर! मैं आपकी इस कृपा की सदैव दासी रहूँगी।"

इसके दूसरे दिवस ही वह मेरे पति के अनुपस्थिति में घर की पिछली दीवार में रस्सी लगाकर चढ़ आया मैं उसे देख कुछ देर अवाक् खड़ी रह गई। वह मेरे पास आने में असाहसी चोर की भाँति ठिठका मैं लज्जा और सतीत्व के भय से भाग कर कोठे में घुस गयी। वह भी मेरे पीछे कमरे में घुस आया।

घंटे से एक बजा। 'होशयार हो होशयार हो' पहरे-दार चिल्लाये। माया ने फिर करवट बदली बाहर से एक ठंढी वायु का झोंका आया उसने गहरी साँस के साथ 'आह' कहा। रात्रि को अधिक शेष जान कर वह चिंता में फिर डूब गयी उसका

भूत-जीवन सिनेमा की तसवीरों की भाँति एक के बाद दूसरी आने लगा।

उसने मुझसे बाहर स्वतत्र संसार में चलने को कहा और वहाँ के सुन्दर और सुखी जीवन को बतलाया। द्वार पर खटका हुआ मैंने उसे वहीं कोने में छिप जाने को कहा। मैंने उसके ऊपर कपड़े डाल कर ढक दिया। वह कपड़ों का ढेर जान पड़ने लगा। पति जब बाहर जाते तो बाहर से ताला लगा देते और आते तो अन्दर से ताला लगा देते जिसकी ताली वह स्वयं रखते थे। इससे दिन रात्रि ताला द्वार पर अन्दर या बाहर से लगा रहता क्योंकि पति के सिवा और आने जाने वाला कोई न था। वह अन्दर खाँसते-खाँसते घुसे और बैठक में जाकर लेट गये।

आशा, तू दैव है! संसार के सभी प्राणी-मात्र तेरे ही सहारे जीवन-संग्राम में उद्यत हो मौत का ग्रास होते हैं। दुःखों में, आपत्तियों में और घोर संकटा में स्वयँ निराशा में उनको एक तेरी झलक कार्य करने को आगे बढ़ाती है। बकरा कसाईख़ाने में भी पहुँच कर कसाई से दया की आशा रख प्रार्थी नेत्रों से उसकी ओर देखता है।

माया अपनी रहम की दरख्वास्त की ही आशा की टिमटिमाते चिराग़ की रोशनी में अपने जीवन का लक्ष्य लगाये थी। जीवन-संध्या के उस पार भविष्य की घोर कालिमा में उसे कुछ दृष्टि-

गोचर न होता। इससे उसे कल्पना के स्वप्न में अपने जीवन की पिछली धुँधली घटनाओं के स्मरण में आनन्द और आशा का स्रोत जान पड़ता।

उसने स्मरण के अन्तिम छोर पर एक धुँधली घटना का स्मरण किया। अब उसको २० साल हो गये। तब वह केवल १५ साल ही की थी। घर मेहमानों से भरा था। घर में खूब रोशनी हो रही थी। द्वार पर बाजे बज रहे थे। घर में स्त्री गाना गा रही थीं। घर आनन्द से भरा था। उसे भी उबटन व स्नान करा कर सुन्दर कपड़े और नवीन आभूषण पहिनाये गये थे। दूल्हा घर में आया और उसके साथ मंडप के नीचे बिठा कर पंडितों ने मंत्र पढ़े। उसका विवाह हो गया। औरतों ने उल्लास में गाने गाये। वह भी उनके साथ आनन्द में मग्न थी। उसने एक गहरी सांस ली। जेल के घंटे से 'टन-टन' बारह बजे। पहरेदार 'होशयार हो, होशयार हो' चिल्लाये।

माया कुछ देर तक चिंता में मग्न रही। सिर उठा कर देखा तो चारों ओर अंधकार में भय व्याप्त था। धीरे से सर फिर दाहिने हाथ पर रख कर करवट के बल लेट गयी। थोड़ी देर बाद फिर सोचा, गौना होकर मैं पति के घर आई परन्तु मुझे वहाँ कोई सुख न मिला। मैं एक प्रकार से दाम्पत्य-जीवन और उसके आनन्द से विमुख थी। पति की अवस्था करीब ४० साल के थी। खाँसी

रात्रिभर उनकी मेहमान रहती। उन्होंने मेरी प्रणय-पिपासा शान्त न की और न उनसे हो सकी, बल्कि उन्होंने मेरे हृदय की इस सुप्त ज्वाला को, आलिगन और चुंबन से और उत्तेजित कर दी। उसकी मात्रा बढ़ गई। मैं प्रणय इच्छा से मतवाली हो गयी मुझे उन (पति) से घृणा हो गयी। उनकी सूरत मुझे अच्छी न लगती। मुझे घर जेलखाना प्रतीत होता। संध्या समय मैं अटारी पर चढ़ कर शहर की सुन्दर गलियों की ओर देखा करती। बाहरी संसार मुझे उस दूर के परवर्ती मनोरम द्वीप की भाँति जान पड़ा जहाँ पर खजूर के पेड़ों की सुन्दर छाया थी। स्वतंत्रता और आनन्द का राज था। परन्तु बीच में अथाह समुद्र था। गली के आदमी मुझे आनन्द की मूर्ति स्वर्ग के विचरण करने वाले देवता जान पड़ते। मैं अपने लालायित नेत्रों से उनकी ओर टकटकी बाँध कर देखा करती। मोहन नित्य आकर मेरी ओर देखता और मैं भी उसे देवता समझ कर देखने का सौभाग्य समझती। मैं उस नीच के प्रेम-पाश में कैसे फँस गई इसका उत्तरदायी मेरे उस समय के संसार का विचार, ही था। मेरा उससे प्रेम बढ़ता गया। उसने एक दिन कंकड़ में बाँध कर एक परचा फेंका। मैंने भी इसी तरह उत्तर दिया। संध्या को मैं डरती हुई उनके पास गयी तो बोले कि 'डाक्टरने दमा बताया है। मैं आज दूध के सिवा कुछ न खाऊँगा। थोड़ा सा दूध ले आओ' उन्होंने लिहाफ़ से

सर ढक लिया। मैं दूध गरम करने को अन्दर आई दूध को अँगीठी पर रख दिया। चिंता और भय काटे खाता था। कोठे के किवाड़ देखने में संकोच होता। कभी कुछ सोचती, कभी कुछ। दूध को गिलास में लेकर मैं सकुचते पैरों कोठे की ओर गई। धीरे से दरवाजा खोला तो देखा कि वह दुष्ट चोर की भाँति कोने में चिपका था। पायजेबों की झनकार को सुन कर सजग हुआ और मुझे देख कर मेरे पास आया। मैंने धीरे से उससे कहा, "तू चुपके-से छत से कूद कर बाहर चला जा, मैं न जाऊँगी। उसने मुझे जेवर व धन का लालच दिया। स्वतंत्र संसार में सुखी जीवन आनन्द से बिताने और सुन्दर दृश्य दिखाने का प्रलोभन दिया।

मैं दूध लेकर बैठक में चली आई। उन्होंने सिर खोल कर मेरी ओर स्नेह-भरी दृष्टि से देखा और हाथ में दूध लेकर मुझे बैठ जाने का इशारा किया। हा! मैं न जानती थी कि दूध का एक ही घूंट पीकर यह दशा हो जायगी। गिलास हाथ से छूट पड़ी और आंखे फिर गयीं। मैं चिल्ला कर उनकी ओर दौड़ी, देखा तो उनके प्राण-पखेरू उड़ चुके थे। मेरी चिल्लाहट को सुन कर मोहन आ गया। उसने मुझे उठा लिया और ढाढ़स बँधाया और घर से निकल चलने को कहा। उसने पति के जनेऊ से चाभी खोल ली। मुझे वहाँ की विपत्ति और पुलिस का भय बताया। मैं इस अकस्मात् विपत्ति से व्याकुल हो गयी और

बाहर चलने को राज़ी हो गयी। मैंने ज़ेवर व धन की संदूक़ची निकाली और पहिनने की साड़ियों का भी एक पुलिन्दा बनाया। मोहन ने बकस और पुलिन्दा उठा कर जल्द चलने को कहा। उसने द्वार का ताला खोला। हम दोनों बाहिर आये।

घंटे से 'टन-टन' दो बजे, होशयार होशयार हो, पहरेदार चिल्लाये, पास के पीपल के पेड़ से उल्लू की कर्कश 'हू-हू' बोली सुनाई दी। माया के नेत्रों से अश्रु के चार बूँद निकल पड़े। कुछ देर मृत पति और घर छोड़ने का चित्र उसकी आँखो के सामने नाचता रहा। वह सिसकती हुई फिर चिंता-मग्न हो गयी।

मै मोहन को देवता समझती थी। वह स्वतंत्र संसार में विचरनेवाला मुझे आनन्द और प्रेम की मूर्ति ही दीख पड़ता। मेरा घर ही मुझे नरक और क़ैदखाना था परन्तु ज्यों ज्यों स्वर्ग और उसका देवता मेरे निकट होने लगा त्यों त्यों स्वर्ग और देवता इस नरक और नरकवासिनी से छूकर नरक और नरकवासी में बदल गया। वह मुझे लेकर उसी रात्रि को रेलगाड़ी में सवार हो लाहौर ले गया। वहाँ छत पर के एक छोटे से मकान में हम दोनों रहने लगे। दिन भर मैं घर के बारे में चिंता-मग्न रहती। दिन काटे न कटता। मैने अपने लिये मोहन से हिन्दी का 'वर्तमान' पत्र मँगाने को कहा। पहिले तो उसने आनाकानी की परन्तु फिर राज़ी हो गया और एक पत्र बेचनेवाले से नित्य पत्र दे जाने को कह

दिया। मैं दिन भर पत्र पढ़ा करती। तीन दिन बाद मैंने 'वर्तमान' में मोटे अक्षरों में लिखा देखा—

'मकान में लाश'

मैं ने उत्सुकता से पढ़ा—

"कानपुर के ग्वालटोली मुहल्ले में हरिकृष्ण की लाश उनके ख़ाली मकान में मिली है। उनकी स्त्री ग़ायब है। लाश की 'पोस्ट-मार्टम' से पता चला है कि मौत 'पोटेसियम-साइनाईड' से हुई है। पुलिस तहकीक़ात कर रही है।"

पढ़ते ही रोमांच हो गया। अनेक चिंतायें होने लगीं। पति के दूध पीने, उनकी मृत्यु, घर से भागने, आदि के चित्र सामने आने लगे। डर से हृदय काँपने लगा। बार बार यह सोचती कि क्या दूध में ज़हर था? उन्होंने आत्महत्या तो नहीं करली! क्या अख़बार में झूठ लिखा है! कभी मैं सोचती कि झूठ लिखा है, कभी सोचती कि पीते ही मर गये! कुछ ज़रूर था। पर था तो कहाँ से आया और किसने डाला? कहीं मोहन ने ऐसा न किया हो! परन्तु उसने क्यों और कब? शायद उसने बातें करते में डाल दिया हो! इतने में मोहन आ गया। मैंने उसे पढ़ सुनाया। सुनते ही उसका चेहरा फीका पड़ गया और कुछ रुक कर बोला, "कुछ समझ में नहीं आता। हो सकता है उन्होंने आत्म-हत्या कर ली हो"। मेरा उस पर सन्देह हो गया।

मैने उससे ज़ोर देकर पूछा, 'क्या तुमने पोटेसियम साइनाईड तो नहीं डाल दिया था ?' उसने वचनों के उत्तर से तो इनकार किया परन्तु हाव-भाव इनकार करने में हिचकते थे। उसकी टूटी आवाज़, चेहरे का रंग, और बोल से स्पष्ट था कि वह झूठ बोलने का प्रयत्न कर रहा है। उसके इस प्रयत्न में जीभ को छोड़ शरीर के शेष सब अंग साथ देने में असफल हुए हैं। मैं समझ गयी कि यह सच बात को छिपाता है और बनावटी बात कह रहा है। उस समय से मेरा उस पर गाढ़ सन्देह हो गया कि हो न हो यही दुष्ट मेरे पति का हत्यारा है। मेरे इस सन्देह की मात्रा दिनोंदिन बढ़ती ही गयी। 'वर्तमान' पत्र अब उसने बन्द कर दिया। मेरा धन धीरे धीरे ख़र्च होता जाता था। मैं एक दिवस गहना खोलने गयी तो देखा कि चाबी ही लच्छे से ग़ायब है। मैं अधीर हो गयी। मेरी आँखों के सामने अँधेरा छा गया। दौड़ कर कोठे में गयी तो बक्स ज्यों का त्यों रखा था। उठाया तो भारी था। बजाया तो आभूषणों की झंकार सुनाई दी। मैं अपनी दीन दशा पर विचार कर रोने लगी। मैं स्वतंत्रता के लालच में घर से निकली थी परन्तु अपने को घोर पराधीनता में फँसा बैठी। परिस्थिति ! तू कठोर बन्धन है। प्राणी से तू नीच से नीच कर्म कराने में समर्थ है। मैं अपनी परिस्थिति विचार कर असहाय थी। अब मैं संदूक़ची पर ख़ूब ध्यान रखती। उसे चाबी

मिलाने को न दी कि कहीं लेकर भाग न जाय और न डाँटने के भय से चाबी खोने के बारे में कुछ पूछा। मोहन के प्रेम में भी अब मुझे सन्देह होने लगा। वह अब मुझे छोटी छोटी बातों पर डाँटता। वह मेरे साथ एक नीच दासी की भाँति बर्ताव करता। कुछ समय बाद मेरे एक पुत्र उत्पन्न हुआ। मोहन रामी को बुला लाया और वह नार काट कर चली गयी। भोजन बनाने का कोई प्रबन्ध न किया। मेवों की कौन कहे मुझे रोटी भी सुख की खाने को न मिलती। मैंने अपने ऐसे दुःखी, दुर्गति, और दुर्भाग्य के समय में अपने बालक को ही भाग्य का उदय समझा। उसे ही भविष्य की सुखद सम्पत्ति, आशा का स्रोत और जीवन धन समझा। मेरा सुन्दर पुत्र ही मेरे सुख, आनन्द, और जीवन का स्रोत था, प्रेम का आश्रय और आराध्य देवता था।

घंटे से टन टन तीन बजे, 'होशयार हो, होशयार हो' पहरेदार चिल्लाये। माया ने करवट बदली तो घोर अन्धकार में उसे भयानक डरावने चित्र कालिमा के पर्दे पर खिंचे दिखाई पड़े 'हू-हू-हू-हू' की भी आवाज़ सुनाई दी। वह डर गयी और नेत्र बन्द कर लिये। फिर कुछ समय बाद वह अपने भूत जीवन के चित्र कल्पना के पट पर देखने लगी।

मुझे मोहन का प्रेम मिथ्या और मतलबी जान पड़ने लगा, वह मेरे पुत्र को घृणा की दृष्टि से देखता। दिन भर वह मुझे

कटु वचन सुनाता मैं उससे डरती थी क्योंकि उसी के आधीन और सहारे रहती थी। एक दिवस मैं अकेली घर में घूम रही थी, बालक सो रहा था। मैंने किसी के आने की आहट पाई। द्वार की ओर देखने लगी। देखा, कि मोहन और उसके पीछे एक लम्बा मोटा गोरा पंजाबी घुस आया। मैं घबड़ा गयी। चीख़ मार कर दौड़ कर कोठे में घुस गई और अन्दर से कुंडी लगा ली। छाती धक-धक करने लगी। भावी संकट ने मेरी आँखों के सामने अँधेरा छा दिया। मैंने किवाड़ों की साँसों में से उन दोनों की ओर देखा। मोहन उससे कुछ धीरे धीरे कह रहा था। मैं सब सुन न सकी परन्तु यह शब्द मैंने सुन लिये "देखा, कैसी सुन्दर कुमारी यौवना है। ५०००) तो इसके निछावर हैं। पंजाबी भी कुछ गुनगुनाया परन्तु मैं समझ न सकी। दोनों बाहर चले गये।

मुझे अब साफ़ जाहिर हो गया कि मोहन मुझे बेचना चाहता है। औरतों के बेचने के क़िस्से मैं 'वर्तमान' में पहिले कई बार पढ़ चुकी थी, परन्तु अपने ऊपर विपत्ति आने पर ही मैंने उस घोर दुःख का अनुभव किया। मेरा मस्तिष्क काम न करता। बुद्धि भय और संकट से क्षीण हो गयी। पृथ्वी मेरे नेत्रों के नीचे रेंगती जान पड़ती। कभी सोचती कि—भाग निकलूँ परन्तु सोचती, भाग कर कहाँ जाऊँगी ? फिर सोचती कि आत्महत्या कर लूँ, परन्तु

प्यारा बालक अनाथ हो भूखों मर जायगा और आत्महत्या पाप भी है। इसी प्रकार तर्क-वितर्क के बीच उलझी थी। समस्या जितनी सुलझाती उतनी ही जटिल होती जाती थी। बालक सोता था उसे एक स्नेह-भरी दृष्टि से देखा। उसके शरीर पर हाथ फेरा और एक चुंबन लिया। द्वार के पास जाकर कुंडी खोली परन्तु बाहर जाने का साहस न हुआ। फिर पीछे फिर कर कोने में देखा तो बकस ग़ायब था। मैं अधीर हो गयी। पछाड़ खाकर पृथ्वी पर गिर पड़ी। मैं कितनी देर इस अवस्था में रही यह नहीं मालूम। जागी, तो बच्चा चीख़ रहा था। मोहन एक हाथ से उसके दोनों नन्हे हाथ पकड़े छाती दाबे था और दूसरे हाथ से गला घोट रहा था। बच्चा चीख़ता था, पैर सर पटक रहा था। आँखे फट कर बाहर निकल आई थीं। जीभ भी मुँह के बाहर निकल आई थी। प्यारे बच्चे की यह दशा देख मैं पछाड़ खाकर मोहन के ऊपर गिर पड़ी और चाहा कि बच्चे को छुड़ाऊँ परन्तु वह उसे बल सहित दाबे रहा। मेरा प्रयत्न निष्फल गया। पास ही एक ईंट पड़ी थी। घोर निराशा में मैंने कुछ न देख उसी ईंट को उठा कर मोहन के सर में मार दी। रुधिर की धार बह निकली। वह चिल्लाया परन्तु मैं बहरी थी। वह बालक के ऊपर गिर पड़ा। क्रोध के वेग में मैंने फिर वही ईंट उठा कर सर में ज़ोर से मारी। वह कुछ तड़फड़ाया परन्तु कुछ

बोला नहीं। सर फट गया था। मैंने अपने प्यारे पुत्र को शीघ्र ही मोहन से हटा कर निकाला। बच्चा खून से तर था। हा! जीवन अब शेष न था। उसके चेहरे पर अब मौत की कालिमा थी। मोहन के भी अब प्राण-पखेरू उड़ चुके थे। संध्या के साथ रात्रि की कालिमा घर में प्रवेश कर रही थी। घर काटे खाता था। दोनों मृत शरीर रक्त से सने सामने पड़े थे। कमरे में चारों ओर ख़ून ही ख़ून था। मेरे कपड़ों पर भी ख़ून के धब्बे थे। मृत्यु भयंकर नृत्य कर रही थी। मुझे कुछ सूझ न पड़ा। नैराश्य और दुःख से व्याकुल हो घर के बाहर निकली। लोगों ने मुझे घेर लिया। उनमें से एक लाल पगड़ी वाले पुलिस के आदमी ने आगे बढ़ कर मेरा हाथ पकड़ लिया।

'टन टन' घंटे से चार बजे। माया ने सिर उठा कर देखा कि बाहर कुछ हल्का प्रकाश हो गया है। उसने किसी के आने की आहट पाई वह उठ बैठी। खाक़ी वर्दी पहिने चार आदमियों ने दरवाज़ा खोला। उन्होंने उसे बाहर आने को कहा। वह घिघयाने लगी, 'क्या फाँसी होगी ? क्या प्रार्थना स्वीकार न हुई ?' उन्होंने जबरदस्ती उसके दोनों हाथ पीठ पर पीछे की ओर बाँध दिये। वह घिघिया कर पैरों पर गिर पड़ी। उनमें से एक बोला "हाँ, दरखास्त नामंजूर हो गयी, अभी फाँसी होगी।"

एक विचित्र कहानी

जिस समय मैं नन्हा-सा बालक था, मेरे पिता कहा करते थे कि शानो एक न एक दिन कोई बड़ा अफ़सर अवश्य होगा। पंडित जी की बनाई जन्मपत्री के अनुसार तो हमारे नक्षत्र में घोड़े हाथी की सवारी लिखो थी, लक्षण भी अच्छे ही थे। बचपन में ही लोगों को मैं अपनी तीक्ष्ण बुद्धि का परिचय दे चुका था। कोई भी काम कहा जाता, मैं तुरन्त उसे कर देता। इसके अलावा बोलने में भी मैं बहुत तेज़ था। इन्ही सब कारणों से मेरी धाक-सी जम गई थी। लड़के मुझी को अपना अगुवा मानते थे, यदि सूरे भगत को चिढ़ाना होता तो पहले मैं ही शुरू करता। यदि 'आती-पाती' का खेल होता तो मैं ही पार्टियाँ बनाता। यदि किसी काम में हाथ न बटाता तो वह काम ही न होता। यानी उस बाल-समुदाय में मेरी पूरी हुकूमत (dictatorship) थी।

एक दिन की बात है पिता जी कुछ पड़ोसियों के साथ बैठे इधर उधर की बातें कर रहे थे। लल्ला जी ने मगरू चमार का खेत

रेहन लिखा लिया था। था तो केवल ५०) रू० पर, परन्तु कुछ और रुपये देकर सूद दर सूद जोड़ कर उन्हों ने ५०) के ५००) रुपये बना लिये थे। मियाद बीतने के दो ही डेढ़ वर्ष बाक़ी थे। मगरू कहता था कि खेत छोड़ दीजिये और बाक़ी रुपये का रुक्का-पुरज़ा लिखा लीजिये। परन्तु लल्ला जी एक ही आदमी ठहरे। गाँव वालों पर रुपये की बदौलत ख़ूब धाक जमी थी। दरोग़ा जी जब जब आते उन्ही के यहाँ ठहरते थे और बाक़ी सिपाही भी उन्हीं के सर तेल लगाते थे। अतः उन्हों ने साफ़ इनकार कर दिया था। लोगों की इसी बात पर टीका-टिप्पणी हो रही थी। समझते सब थे, पर लाल पगड़ी के सामने बोलने की हिम्मत कौन करता!

राम अधीन बोले—बेचारा ग़रीब है, रुपया दे ही रहा है तो फिर खेत छोड़ने में उज्र तो न होना चाहिये।

मेवालाल—पर उनसे कहे कौन? वे तो दूसरे जेठ तक ऐसा ही करेंगे। फिर बोल ही कौन सकता है? दरोगा जी इस वक्त उन्हीं के हाथ में हैं।

सजन लाल—भाई यह देखा तो नहीं जाता। ग़रीब बेचारा मारा जाय और कोई चूँ तक न करे!

राम अधीन—तो जाके करा क्यो नहीं देते?

यह समय वह था जब कि विदेशियों ने अपना सिक्का पूरी तौर से देश पर जमा लिया था। दासता को ही लोग स्वाधीनता समझते थे। अँग्रेज़ सरकार को लोग बधाइयाँ देते थे।

मैं भी पास ही बैठा कमला के साथ खेल रहा था। हम लोगों का धूल का घर बन कर तैयार हो गया था। रसोई का घर अलग और सोने का कमरा अलग। आँगन भी तैयार ही था। हम लोग यही सोच रहे थे कि बाहर का बड़ा दरवाज़ा कहाँ रखा जाय कि रामअधीन के शब्द मेरे कानों में पड़े। मैं तुरन्त बोल उठा—परन्तु वह तो अपना हक़ ही माँगता है आप लोग यह देख कर भी सह लेते हैं। आज मगरू पर बीत रही है, कौन जाने कल आप ही पर धावा बोल दिया जाय।

मेरी बात सुनते ही सब सन्न हो गये। एक नन्हे-से बालक के मुँह से ऐसी बात! कमला मेरी सराहना करने लगी। पिता जी ने तुरन्त मुझे गोद में उठा कर चूम लिया। कमला भी आकर मेरे बगल में खड़ी हो गई। परन्तु थोड़े ही समय में बातों ने पलटा खाया। पिता जी को पहले मेरी बात जँची तो अवश्य परन्तु तुरन्त ही इस डर से कि कहीं लल्ला जी को इस बात का पता न लग जाय, बोले: "शानो, तुम्हें ऐसा नहीं कहना चाहिये वह अपने से बड़े हैं जो चाहें करें, तुमसे इससे क्या मतलब—?"

यह बात हमारे और कमला दोनों के हृदय में अज्ञात रूप से लग गई और सदा के लिये चोट कर गई।

जब हम लोग कुछ बड़े हुए, स्कूल में भेजे गये। कुछ हिन्दी जानने के बाद हम लोग अंग्रेज़ी स्कूल में भरती किये गये। वहाँ हम लोगों का मन पढ़ने में ख़ूब लगता था। दर्जे में ऐसा अन्य कोई भी लड़का न था, जो हम लोगों की बराबरी कर सकता। हम लोग साथ ही साथ स्कूल जाते और आते। हम लोगों की ओर लोगों की आशायें नित्य-प्रति बढ़ रही थीं। कमला भी अब बढ़ चली थी। कमला के पिता ने कमला को उस स्कूल से अलग करना चाहा परन्तु हेड मास्टर साहब की राय से उन्होंने ऐसा नहीं किया। कमला केवल हमें छोड़ कर किसी से भी मिलती-जुलती न थी। स्कूल हम लोग साथ ही आते और साथ ही जाते। अतः कमला के पिता को भी कोई आपत्ति न हुई।

हम लोग सदा अपने दर्जे में फ़र्स्ट और सेकेंड होते, हमारे पिता गर्व से फूले न समाते। उन्हें सदैव सुनहले स्वप्न दिखाई देते। किसी दिन वे भी एक बड़े अफ़सर के पिता होंगे! लोग उन्हें सलाम करने आयेंगे। वे गर्व के साथ उठकर उन लोगों को बैठायेंगे और फिर लोगों पर उनका कैसा सिक्का जम जायगा! वे इन्हीं सब विचारों में मग्न रहते।

इसी समय १९१९ का सुधार (Reform) आया। सारी प्रजा असन्तुष्ट थी। महात्मा गान्धी ने असहयोग आन्दोलन से हलचल मचा दी। अंग्रेजों के छक्के छूट रहे थे। उन्हें तनिक भी आशा न थी कि अब वे भारतवर्ष में रहने पायेंगे। परन्तु समय ने पलटा खाया—चौरीचौरा के कारण महात्मा गान्धी को असहयोग आन्दोलन बन्द करना पड़ा। हम लोगों के विचारों ने भी पलटा खाया। मैंने देश-सेवा की ठानी और कमला ने स्त्री-समाज के उद्धार की। हम लोगों ने यह निश्चयपूर्वक सोच लिया था कि बिना ग्राम और स्त्री-समाज के सुधार के कुछ भी नहीं हो सकता।

हम लोगों के लेख ग्राम और स्त्री समाज के सुधार पर निकलने लगे। लोग देख देख कर दंग रह जाते। इतना ही नहीं हम लोग बोल भी खूब लेते थे। अपने कालेज के वाद-विवाद में हम लोगों का नाम सब से पहले रखा जाता। यदि हम किसी प्रस्ताव का संचालन करते तो वह विपक्ष की अगुआ होती। इसके बाद पढ़ने में भी हम लोग किसी से कम न थे। जिस समय मैं यूनियन(Union)के सभापतित्व के लिये खड़ा हुआ, किसी की भी हिम्मत न पड़ी कि हमारे खिलाफ़ खड़ा हो। कमला भी उसी के साथ उप-सभापति चुनी गई। यानी हम लोगों का साथ कहीं भी नहीं छूटा। लोगों ने मुझे आई० सी० एस० की

परीक्षा में बैठने के लिये कहा। पिता जी भी यही चाहते थे परन्तु हम लोगों ने तो देश-सेवा की ठानी थी। अतः हम दोनों ने क़ानून (Law) पास किया और अपने अपने कामों में प्रवृत्त हुए।

जिस समय मैंने वकालत शुरू की मेरे पिता की मृत्यु हो चुकी थी। अब मैं अपनी जायदाद का पूरा स्वामी बन गया था। मेरा कालेज का जोश स्थायी काम करने में परिणत हुआ। एक तो पहिले से मैं ग्रामीण विषयों को जानता था। अब मैंने और भी उस विषय का अध्ययन किया। मैं अपने ग्रामीण भाइयों की दशा देख कर बेचैन हो उठता। मेरे सतत् उद्योग से कुछ लोग और भी इस विषय में भाग लेने लगे। इन्हीं कुछ लोगों की मदद से मैंने जमगाँव में एक ग्राम-सेवा-संघ खोला। वहाँ हर दूसरे दिन शाम को व्याख्यान तथा प्रदर्शिनी (Show) होने लगी। पहले तो गाँव वालों के विश्वास पाने में कुछ कठिनाई हुई परन्तु जब उन लोगों को मालूम हो गया कि इससे उनका फ़ायदा छोड़ नुकसान कुछ भी नहीं है, वे स्वयं इसमें सम्मिलित होने लगे। अब तो हम लोगों का जोश और भी बढ़ा और हम लोगों ने नये जोश से फिर काम करना शुरू किया मैजिक लेन्टर्न (Magic Lantern) से उन लोगों को अनेक बातें बतलाई गईं। खेती करने के नये तरीक़े जारी किये गये।

वहीं एक अस्पताल खोला गया और (Adult Night School) खोले गये। धीरे धीरे वहाँ एक म्यूनिसिपैलिटी (Municipality) का भी प्रबन्ध किया गया। यानी इसी प्रकार वह गाँव हर तरह से अपने लिये पर्याप्त हो गया। पूर्णरूप से शान्ति विराजमान थी। न वहां झगड़ों और कचहरियों की धुन थी और न नौकर शाही का डर।

उधर इस गाँव की यह हालत देख कर गाँव गाँव में सेवा-संघ खोले गये। हर एक जगह ग्राम-सुधार (Village Uplift Scheme) पूर्ण रूप से काम में लाई जाने लगी। सब जगह एक प्रकार से नवीन स्फूर्ति आ गई। आज यह काम शुरू किये मुझे दस वर्ष हो गये। अब ऐसा कोई भी ग्राम नहीं रहा जहाँ लड़के और लड़कियों के लिये पाठशालाएँ न हों। हर ग्राम में एक वाचनालय है, जहाँ छोटे से लेकर बड़े सब जाकर अपने अपने अवकाश में दुनियाँ के कोने कोने की खबरें मालूम कर आते हैं। इतना ही नहीं सब जगह एक-दो विश्रामगृह भी हैं जहाँ लोग शाम को एकत्रित हो कर हर विषय पर तर्क-वितर्क भी किया करते हैं। हर एक बच्चा अपने कर्तव्य को समझता है और हर एक को अपनी जातीयता का अभिमान है। किसी प्रकार की अशान्ति नहीं है, परन्तु एक अशान्ति अवश्य है। प्रजा अब विदेशी सरकार नहीं सह सकती। जहाँ देखिये

वहाँ स्वराज्य की चर्चा है। वह उनका जन्मसिद्ध अधिकार है और वे उसे लेकर ही मानेंगे। एक भीषण आन्दोलन शीघ्र ही उठने वाला है जिसे प्रचण्ड से प्रचण्ड आँधी भी नहीं रोक सकती।

× × × ×

उधर कमला भी अपने क्षेत्र में तल्लीन भाव से काम कर रही थी। अपने मार्ग से वह कभी विचलित नहीं हुई। 'अखिल भारतवर्षीय महिला कान्फ्रेंस' की वह कई बार सभानेत्री (President) हो चुकी है। उसने अनेकों प्रस्ताव पास कराये परन्तु उसके प्रस्ताव कायस्थ कान्फ्रेंस के प्रस्तावों की तरह काग़ज ही पर लिखे नहीं रह गये। हर एक ज़िले और तहसील में उसकी शाखायें खोली गईं। ग्राम-सेवा-संघ से उसे और भी सहायता मिली—हर एक तहसील में क्या, गाँव गाँव में स्त्री स्वयं-सेवक नियत की गईं। धीरे धीरे कमला की आवाज कोने कोने गूँज गई। उसकी कार्य-पटुता, अटूट साहस तथा अविचलित धैर्य देख कर लोग दंग रह जाते। वह किसी प्रकार भी बिना महिला उद्धार के नहीं रह सकती। आख़िर वह दिन आ ही गया जब कि भारत की महिलाएँ अन्य देशों की महिलाओं से किसी तरह भी कम न रहीं। अब पर्दा को लोग भूल-सा गये। लड़कियों के स्कूल, कालेज और यूनीवर्सिटियाँ अलग स्थापित हुईं। ऐसा

कोई भी कार्य न रहा जिसमें स्त्रियाँ पीछे रहतीं। उन्होंने अपने अपने क्लब स्थापित किये—अपनी व्यायाम शालायें बनवाईं। उनके अलग अलग वाचनालय हैं। वे अब किसी प्रकार भी पुरुषों से पीछे नहीं हैं। इतना ही नहीं कितनी ही बातों में तो वे पुरुषों से भी आगे बढ़ गईं।

× × × ×

आज स्वराज्य प्राप्त हुए दो वर्ष हो गये। मेरी अवस्था इस समय ४० वर्ष और कमला की ३५ वर्ष है। मैं अपने कार्य को फली-भूत देख कर ईश्वर को धन्यवाद देता हूँ। देश के कोने कोने में बच्चा बच्चा शान्ति के नाम से वाक़िफ़ है। कमला तो पूजनीया देवी हो गई है। उसे लोग 'जगत्-तारिणी' कहते हैं। जिस समय हम लोगों ने कार्यक्षेत्र में पाँव रखा था, यह प्रण कर लिया था कि कार्य-समाप्ति में जीवन अर्पण कर देंगे। यदि सफल हुए तो फिर हम दोनों शान्ति-मय जीवन व्यतीत करेंगे। यह प्रण केवल हम दोनों को छोड़ अन्य किसी को भी विदित नहीं था। परन्तु आज जो कष्ट मुझे हो रहा है वह शायद ही कोई समझ सका है। हम लोगों में परस्पर एक दूसरे के लिए श्रद्धा तो है अवश्य, परन्तु उसकी तो हालत ही बदल गई है। जहाँ मैं आज भारत के प्राचीन गौरव से उछल पड़ता हूँ, वहाँ वह पाश्चात्य सभ्यता की ओर लालायित हो रही है। उसे स्त्री

सुधार की धुन अब भी सवार है। पाश्चात्य स्त्री-समाज उसका आदर्श है। मैंने अनेकों बार उसे समझाया, पत्र लिखे, लेख निकाले, परन्तु वह तो उसके धुन में पागल थी।

अनेकों शताब्दियाँ दबी रहने के कारण सभी स्त्रियाँ अपने स्वत्व के लिये दौड़ रही हैं। वे इस समय पुरुषों के साथ समानाधिकारिणी हैं। परन्तु वह आंधी जो एक बार उठी है अब अकारण शीघ्र नहीं दबने वाली है। उन्हें अब पुरुषों के ऊपर अपना अधिकार जमाना है। वे अब किसी प्रकार भी पुरुषों से दब कर न रहेंगी। वे तो अब अपनी प्रभुता जमायेंगी। जहां अनेक वर्षों तक वे दासता में बँधी थीं वहाँ अब वे भी अपने बल से संसार को अपने कब्ज़े में रखेंगी। ठीक उसी प्रकार जैसे मनुष्यों ने उनके सहित उनकी सब वस्तुओं पर कब्जा जमा लिया था।

फलतः धड़ाधड़ हर प्रकार से स्त्री-संस्थाओं की संख्या बढ़ने तथा उनकी वृद्धि होने लगी। मनुष्यों ने आलस में पड़कर सब काम उन्हीं पर छोड़ दिये। धीरे धीरे राज की बागडोर भी उन्हीं के हाथों में आ गई। हर प्रकार से उन्होंने अपने को ऊँचा बनाने की कोशिश की। कोई भी उपाय उन्होंने नहीं छोड़े।

एक दिन अब वह आया जब कि समाज में पुरुष की कोई गिनती ही न रही। पुरुषों को नींद भी खूब लगी। शताब्दियों तक

कार्य-संचालन से वे थक-से गये थे, उठने का नाम भी न लिया। कुछ ऐसे ही इने-गिने मनुष्य रह गये जो फ़ौज में काम करते। सेनापति (Commander) देखिये तो स्त्री ए. डी. सी. (A. D. C.) देखिये तो स्त्री। यानी कहीं भी मनुष्यों की गुंजाइश न रही। मनुष्य केवल सुख के साधन हो गए। स्त्रियोंने देखा, केवल एक ही समय ऐसा है जब कि उन्हें मनुष्य से नीचा देखना पड़ता है—वह प्रसव का समय। धीरे धीरे यह उन्हें खलने लगा। लोगों के विचारों ने पलटा खाया। धीरे धीरे सभायें हुई। आख़िरविराट् सभा में पास हो गया कि विवाह करना निन्दनीय है। इसका वहिष्कार करो। बस, फिर क्या था—अविवाहितों की संख्या १०-२०-३०-४०-५० फ़ी सदी हुई। जिन्होंने अपने विवाह कर लिये थे, तलाक़ दिया। फिर क्या था, दो वर्षों में ही उनकी संख्या ९५ प्रतिशत हो गई।

अब पुरुषों को चेत हुआ—उनकी विलासिता की एक मात्र बची-खुची वस्तु भी उनसे छीन ली गई। दिन भी पूरे हो गये थे। प्रकृति के प्रतिकूल कोई अधिक दिन तक नहीं चल सकता। मैंने एक बार फिर प्रतिज्ञा की। वही पिशाचिनी कमला जो हमें प्राणों से भी प्यारी थी मेरी जानी दुश्मन हो गई। मुझमें वह शक्ति अब भी बाक़ी थी कि मैं एक बार फिर आन्दोलन

करता। उसके लिये भूमिका तो कमला ने ही स्वयं प्रथम बाँध दी थी। मैंने उसे अनेकों बार समझाया था, परन्तु वह सुनने वाली कब थी? बड़ों का अन्तिम दोष आत्म-प्रशंसा ही तो होता है। वह भी उसमें उन्मत्त हो गई थी।

मैं फिर अगुआ बना—पत्र लिखा—

"देवि कमला—नहीं पिशाचिनी कमला—

तेरा अत्याचार अब असहनीय है! क्या तुझे यही बदा था? अब भी भारत का मुख प्राचीन स्त्रियों के कारण उज्ज्वल है! यह मेरा वार तुझ पर प्रथम और अन्तिम है। इसको तू शायद ही रोक सके। देख सम्हल"—

तेरा·····

शानो।"

पत्र उसके पास पहुँचा। स्थिति दोनों के हाथ से बाहर निकल चुकी थी। पुरुष-समाज अनेकों बार धोखा खा चुका था। स्त्री-समाज का यह पहला अवसर था। आख़िर काठ की हाँडी कब तक चलती! कमला को चेत हुआ—वह प्रचण्ड काल-भैरव की भाँति पाश्चात्य सभ्यता सर्वनाश करने चली, परन्तु अब हो ही क्या सकता था! माथा पकड़ कर बैठ गई। वे बचपन के दिन याद आये। फिर सम्हल गई और लिखने लगी—लिखा:

"प्यारे, नहीं परम पूज्य शानो,

आज मुझे मालूम हुआ कि मैं किस ग़लत रास्ते पर थी। तुमने इतना समझाया परन्तु मैं तो पाश्चात्य सभ्यता पर दीवानी थी। परन्तु अब मुझे पता चला कि इस संसार में स्त्री पुरुष का सम्बन्ध एक दूसरे के लिये अनिवार्य है। इसी को क़ायम रखना प्रकृति का कार्य है। शानो! दोषी मैं ही हूँ। इसका पश्चाताप मैं स्वयं कर लूँगी। शेष जब भेट होगी तब। मेरी अन्तिम आशा यही है कि दूसरे जन्म में हम लोग साथ होकर अपने बचपन का वादा पूरा करें और इस कार्य की पूर्ति करें।

क्षमा करना

तुम्हारी

——कमला"

इस पत्र के पहुँचने पर पता चला कि कमला अब इस संसार में नहीं है। हम लोगों के सब पत्र अख़बारों में निकले। कमला का एक लेख भी था जिसमें उसने अपनी भूल स्वीकार की थीं। अन्त में उसने सबसे माफ़ी माँगी थी और फिर दूसरे जन्म में मेरी सेवा करने की प्रतिज्ञा की थी।

'किसान और क्रान्ति'

प्रातःकाल के सुन्दर सुहावने समय में कृपाराम अपने दो दुर्बल बैलों को हाँकता हुआ हल कन्धे पर रख कर बेसुधों की चाल से बेतुका राग अलापता हुआ अपने खेत की ओर चला जा रहा था। किसान कितना सुखी है, दूर से देख कर बाबू लोग ऐसा ही कह दिया करते हैं। पर भली भाँति देख कर मनोविज्ञान का कोई ज्ञाता ही बता सकता था कि कृपाराम ने किस सुन्दरता से अपनी मनोभावना और हृदय-वेदना को संतोष के आवरण से छिपा रक्खा है। क़र्ज़ से दबे रहने पर, दैवी कोपों को सह कर और अविवाहिता युवती कन्या का बाप होकर भारत का किसान कैसे सुखी और संतोषी हो सकता है—यह तो संसार की एक जटिल समस्या है! वस्तुतः किसान भारत का प्रतिबिम्ब है। भारत निर्धन है—भारत संतोषी है।

कुछ दिनों से राजपुर गाँव में एक अजीब प्रकार की हलचल मची हुई है—राजनैतिक या सामाजिक हलचलें तो गांवों में

पहुँचती पहुँचती बहुत हलकी पड़ जाती हैं। अच्छा ही है, गांव वाले इन हलचलों से बच तो जाते हैं। ठीक तो यह है कि वे इतनी उलझनों में फँसे रहते हैं कि और फाँसों को उनके शरीर पर जगह ही नहीं मिलती। उपरोक्त हलचल का कारण टीड़ी दल का आक्रमण है। दो वर्षों से अनावृष्टि के कारण इस सोने की चिड़िया के पङ्ख वैसे ही झड़ चुके थे, फिर भी दिन रात कुँआ और हल चला कर जो कुछ भी किसान ने जबर्दस्ती पैदा करने की कोशिश की थी उसी का सफ़ाया करने के लिये यह भी पूँजीपति परमात्मा की एक सेना थी। आज भी दोपहर के समय जब कि कमला अपने पिता को रोटी ले जाने के लिए तैयार थी, चलती फिरती घटा से सूरज छिप गया, लोग आसमान की ओर टकटकी लगा कर देखने लगे। बादल नीचे को झुकते जाते थे। देखते ही देखते टीड़ी खेतों में फैल गई।

कन्याओं का करुणालाप, अबलाओं की आहें और निर्धनों की प्रार्थना इस दैवी प्रकोप को न रोक सकीं। खेती वाले बनियों की प्रसन्नता का तो कुछ ठिकाना ही न था, पर किसानों में शोक-पूर्ण खलबली मच गई। सब अपने अपने खेतों की ओर भाग पड़े। कमला भी रोटियां पटक कर अपनी माता के साथ अपने खेतों की ओर भागी। उसका पिता अपना हल छोड़ कर

पहिले ही वहां पहुँच चुका था। कहीं शाम के समय उन्हें इस बला से छुट्टी मिली।

कमला और उसकी माता सुबह से भूखी थीं। वे थकी मांदी घर को लौट आईं कमला का पिता भी दो घड़ी हल चला कर गांव को लौट आया। पुत्री ने पिता को खाना दिया पर उसकी माता की आंखों में क्रोध करुणा और तृष्णा की झलक थी। किसान ने अपनी पत्नी की ओर देखा, प्रेम के आवेश से उसका मुख-मण्डल चमक उठा। पिता के प्रेम के शब्द, माता की मधुर मुस्कान, और पुत्री का मधुरालाप, रात्रिकाल की यह दिन-चर्या ही तो उसके दुखी जीवन की एक मात्र आधार थी। पर बहुत कम आदमी अपने आपको छिपा सकते हैं। किसान ने देखा कि उसके मुख पर क्रोध और तृष्णा नाच रही है, सदा प्रसन्न रहने वाली रमणी के मुख पर उद्विग्नता के भाव देख कर किसान घबड़ा गया और पूछा, बात क्या है ?

रमणी—दूध में गुड़ तो ठीक है ?

किसान—हाँ ठीक है, पर तुम इतनी उदास क्यों हो ?

रमणी—कमला आज दोपहर आप के लिए खाना न ले जा सकी।

किसान—ऐसा तो कई बार हो चुका है, आज नई बात कौन सी है !

रमणी—(उत्तेजित हो कर) इस पुरानी दुनियाँ में नई बात कौन सी है ! वही पुरानी दुनियाँ, पुराने कपड़े, पुराना मकान, पुराने दुःख और वही पुराना रोना—सचमुच ही किसान की दुनियाँ में नवीनता का प्रवेश असम्भव नहीं तो अत्यन्त दुर्लभ अवश्य है। जब भी कभी नवीनता ग्राम-दुर्ग में प्रवेश करने का साहस करती है, तभी प्राचीनता के दो बहुत बड़े ठेकेदार—गाँव का बनिया और गाँव का पण्डित उसे बहुत पीछे ढकेल देते हैं—

किसान रमणी की बात सुन कर गम्भीर हो गया, कमला से कहा—जा बेटी, भैंस को सानी कर आ और जाकर सो जा। कमला के चले जाने पर उसने अपनी स्त्री से पूछा—यह सब तुम क्या कह रही हो।

रमणी—कोई नई बात नहीं, आप भोलानाथ से तो बहुत अधिक काम करते हैं।

किसान—वह तो रायसाहब है—बहुत बड़ा महाजन है, हम पर ही उसके डेढ़ हज़ार रुपये चाहने हैं। वह काम क्यों करे ?

रमणी—और आप से अधिक आन्याय क्यों लूटे ? उसका क़र्ज़ भी किस पर है। वह दिन का लुटेरा है, तुम रात के चोर हो। वह अकड़ कर तुमसे माँगता है, तुम दबे पाँव उसे दे देते हो। हमारे विवाह में आपके दादा ने २५०) ही तो

लिये थे। ३५०) उसकी थैली में पहुँच चुके हैं और फिर भी तुम कहते हो हम उसके १५०) चाहते हैं। मैं उससे अपने तीन हज़ार रुपये वापिस लूँगी।

किसान—पर तुम्हें क्या हो गया है, क्या, तुम पागल हो गई हो ?

रमणी—मैं पागल हो गई हूँ। मैं वही काम करूँगी जो पागल आदमी किया करते हैं, आज दोपहर की बात देख कर कौन पागल नहीं हो जाता ?

किसान—क्या बात थी ?

रमणी—कुछ नहीं, आपके हल का खूड टेढ़ा हो गया था, उसे देख कर पागल हो गई।

किसान—आख़िर कुछ बात भी थी।

रमणी—तुम सब कुछ देखते हो पर देखने से पहिले ही आँख मूँद लेते हो। आज जब भूखी कमला टीड़ी उड़ाने जा रही थी, भोलानाथ की पुत्री शान्ति पतङ्ग उड़ा रही थी और उसका बड़ा लड़का कमला का नाम लेकर अश्लील शब्द कह रहा था। कमला शान्ति से अधिक बुद्धिमती और सुन्दर है, पर शान्ति का विवाह एक बहुत पढ़े लिखे सुन्दर युवक से होने वाला है। कमला १८ वर्ष की हो गई और उसे आज तक कोई वर नहीं मिला !

वह इन सब बातों को इतनी जल्दी कह गई कि किसान की समझ में बहुत कम आया। हाँ, इसे भोलानाथ के प्रति थोड़ा-सा क्रोध अवश्य आया। रमणी को और कुछ कहना न था, किसान को भी और कुछ सुनना न था। दोनों उठ कर अपने विचार-सागर में गोता लगाते हुए जा सोये।

× × ×

(२)

अर्ध रात्रि की शान्ति में भी शान्ति को शान्ति न थी। वह हर्षोन्मादिनी हो कर विचार सागर में डुबकी लगा रही थी। प्रथम मिलन को रात्रि में वह कैसे तटस्थ भावना से चारपाई के एक कोने में जा लेटेगी—नरेन्द्र कैसे उससे बात करने को उत्सुक होगा और वह सोने का बहाना करेगी……

दुराग्रह—हठीला उन्माद—अनमोल चुम्बन……अन्त में स्वर्गीय मिलन…… उसकी हृदय-तंत्री बज उठी। इस 'थकान, ज्वर और दुख' की दुनिया से बहुत दूर वह आनन्दमय मानसिक संसार में विहार करने लगी। बुलबुल गा रही थी, अप्सरायें नाच रहीं थीं, सुन्दर नरेन्द्र उसके मुँह की ओर ताक रहा था और शान्ति उस दुनियाँ की रानी थी। वासना का नशा प्रबल है या कविता का—यह तो कहा नहीं जा सकता। शान्ति की दुनियाँ भी

उतनी ही देर में लुप्त हो गई जितनी देर तक कीट्स की बुलबुल गाती रही थी। शान्ति के मन में एक और भावना उत्पन्न हुई। नरेन्द्र एम०ए० की प्रथम श्रेणी में पास हुआ सही, पर सुना है कि वह आई० सी० एस० (I.C.S.) की परीक्षा मे न बैठेगा। उसमें देश भक्ति की भावना वासना की लालसा से अधिक प्रबल है। वह यूथ लीग (Youth League) का मंत्री है। युवक संगठन या ग्राम संघठन में अपनी शक्ति लगा देगा। शान्ति को भी ग़रीबो की बेटियों की तरह गाढ़े के कपड़े पहिनने पड़ेंगे! शान्ति खुर्दरी खादी के चुभने से बेचैन हो उठी। उसके आभूषण उतार कर गाँधी जी को भेंट किये जा रहे थे। उसका दिल मोटर में गद्दा पर बैठ कर, बिजली की रोशनी में सज कर, किसी सुन्दर छैल छबीले युवक के साथ सिनेमा जाने के लिये तड़प उठा। उसने चिल्ला कर कहा, "क्या मेरे पिता को और कोई रईस का लड़का नहीं मिला!" अनमनी शान्ति के मुख से ये शब्द निकले ही थे कि किसी ने उसके सोने के कमरे का द्वार खटखटाया। वह घबड़ा कर उठ बैठी और पूछा "कौन है?"

"अच्छा, अब तक जाग रही थी, दरवाज़ा खोलो।"

शान्ति स्वर तो न पहचान सकी। सोचा—कोई घर का ही आदमी होगा, द्वार खोल दिया, कोई दीर्घकाय वृद्ध स्त्री खड़ी

हुई है। वह चाँदनी से भी सफ़ेद कपड़े पहिने हुई थी और उसका मुख बादलों से भी काला था। शान्ति ने डर की एक चीख़ मारी और बेहोश हो कर गिर पड़ी। चीख़ को सुन कर भोलानाथ जो पास ही के कमरे में थे, जाग पड़े और एक नौकर को साथ ले शान्ति के पास आये। नौकर ने छत पर से कूदती हुई एक 'प्रेतनी' को देखा। भोलानाथ ने कहा "इसका पीछा करो और देखो कहाँ जाती है।" भोलानाथ शान्ति को होश में लाया और पूछा "क्या बात थी ?" शान्ति ने टूटे-फूटे स्वर में कहा—एक प्रेतनी आई थी, इसके अतिरिक्त कुछ नहीं जानती। हाँ, उसके सब आभूषण भी लुप्त हो गये हैं। इतने ही में नौकर लौट आया और कहा "हुजूर, वह आपके ही एक किसान के घर में घुस गई है और मुझे तो वह उस किसान ही की स्त्री मालूम होती है। मैंने उसे कई बार देखा है और मैं उसे चाल से पहिचानता हूँ।"

राय साहब अपनी पिस्तौल, चार जमादार और नौकर लेकर चला। द्वार खुला हुआ था। स्त्री कपड़े तो बदल चुकी थी पर अभी मुँह की स्याही बाक़ी थी। चतुर भोलानाथ सब बात समझ गया। कहना न होगा कि यह स्त्री कमला की माता थी जो इस प्रकार अपना तीन हज़ार का कर्ज़ चुका कर लाई थी, भोलानाथ ने पूछा आभूषण कहाँ हैं ?

"मैं नहीं जानती ?"

"रात्रि को क्यों गई थी ?"

"अपना कर्ज़ चुकाने के लिये"

भोलानाथ (हँस कर) तेरे बाप-दादे ने भी किसी को कर्ज़ दिया था। घर में जवान कुँवारी लड़की गाँव के लड़कों के साथ अवारा फिरती है। उसका ही—

स्त्री अपनी देवी पुत्री के प्रति अपशब्द सुनकर क्रोध में भर गई और होंठ काट कर झुँझला कर बोली "दुष्ट, चाँडाल निकल जा मेरे घर से।"

"जानती हो मैं कौन हूँ।"

हाँ जानती हूँ। गत महायुद्ध में ग़रीब किसानों का ख़ून बहा कर तुम्हें रायसाहिबी के कलंक का टीका मिला है। तुम किसानों का गरम ख़ून पीने वाले चाँडाल हो। सरकार की नौकरशाही के तलवों को चाटने वाले ज़लील कुत्ते हो!

ज़मींदारी का नाटक खेला जाने लगा। कमला की माता नंगी करदी गई और कोड़े मारे जाने लगे और कमला निश्चल खड़ी रह कर इस दृश्य को देखती रही। "तीनों को बाँध कर दो दिन तक हमारी कचहरी में बंद रक्खो। बाद में मुकदमा चलाया जायेगा" हुक्म देकर भोलानाथ चला गया। कमला के माता पिता दोनों रस्सियों से जकड़ दिये गये। जब कमला

के बांधने का समय आया तो नौकर ने कहा, "कुँवर साहिब, का खयाल करो, इससे कुछ मत कहो।

कमला अपने घर अकेली बैठी रही और उसके माता पिता एक अँधेरी कोठरी में डाल दिये गये।

थोड़ी देर बाद कमला के घर में राय साहिब के सुपुत्र कुँवर साहिब ने प्रवेश किया और कमला से कहा, "प्यारी मैं आज जीवन का आनन्द उठाने आया हूँ। मैं तुम्हारे माता पिता को छुड़वा दूँगा और उन पर मुक़दमा भी न चलवाया जायेगा। क्या तुम मेरे प्रेम को स्वीकार करती हो"।

कमला—प्रेम के मन्दिर में वासना का पुजारी प्रवेश नहीं कर सकता। मुझे तुम्हारे अन्दर से वासना की दुर्गन्धि आती है। मुझे क्षमा करो और यहाँ से चले जाओ"।

"अजी सरकार, इतनी नाराज़ मत होओ"। यह कह कर कुँवर साहिब ने कमला का हाथ पकड़ लिया और उसके कपोलों की ओर अपना मुँह बढ़ाया। कमला ने चंडी का रूप धारण कर लिया और पास में रखा हुआ गँडासा उठाकर उसकी ओर बढ़ी। पापी और व्यभिचारी में दिल ही कितना होता है! कुँवर साहिब भाग खड़े हुये। कमला ने घर का द्वार बन्द कर दिया। निकलते हुये चन्द्रमा की ओर मुँह करके जा बैठी और गंभीर होकर अपने भाग्य पर विचार करने

लगी—क्या मैं अपनी यात्रा का बदला न ले सकूँगी ? मेरेही कारण उन्होंने यह पैशाचिक अत्याचार सहा। मेरे ही विवाहकी चिन्ता से पिता जी उद्विग्न रहते हैं! हिन्दुओं में विवाह करना धर्म का अंग है तब मेरा विवाह कैसे होगा ? अब कौन क़र्ज़ देगा। क्या मैं अपने लिये कर्ज़ लेने दूँगी। तीन साल में दुगना, छः साल में चौगुना, नौ साल में अठगुना और बारह साल में सोला गुना होने वाला यह क़र्ज़ हरिण की तरह कूदता फिरता है! मैं इसके चंगुल में अपने पिता को हरगिज़ न पड़ने दूँगी। पता नहीं कमला ने क्या क्या सोचा। मानसिक विचारों का पता कौन लगाये पर कमला बड़े विकट परिणाम पर पहुँची। बदला लेना तो असंभव है। गंगा में डूब कर प्राण दे दूँ। मेरे पिता की सब चिन्ता मिट जायेगी।............

× × × ×

(३)

ब्रह्ममुहूर्त का समय था। पृथ्वी पर सफ़ेद चाँदनी छिटकी हुई थी। उषा का उदय प्रारम्भ हो गया था। ऐसे समय में एक मस्ताना युवक गंगा के पुनीत पुलिन पर टहल रहा था। उस नीरव राज्य का एक मात्र स्वामी अपने गान से शान्त वातावरण को गुञ्जित कर रहा था। वृक्षों के पत्तों में से प्रति ध्वनि आती थी।

"बोल जय भारत की, दुन्दुभी बजायेंगे।
भारत के बीर बांके क्रांन्तियाँ मचायगे"।

बार बार "क्रांन्ति" का शब्द सुनकर कमला ठिठक गई। वह क्रान्ति का अर्थ न समझती थी। पर उसे त्रास होने लगा। क्रान्ति उसके जीवन का एक-मात्र सहारा है। गंगा में डूब मरने से माता का बदला कैसे लूँगी? मैं मरूँगी नहीं। क्रान्ति के लिये जीवित रहूँगी। फिर उसे अपने अटल निश्चय की याद आई और गङ्गा में प्रवेश करने लगी। फिर वही मधुर गान सुनाई दिया और सुनाई दी क्रान्ति की जय-ध्वनि।

वह गंगा में से निकल आई और क्रान्ति के उपासक से मिलने के लिये चल दी। पास आने पर मालूम हुआ कि सुन्दर सुडौल युवक मस्ताना राग अलाप रहा है। युवक ने भी कमला को देखा—इतनी सुन्दरी युवती ऐसे सादे वेष में! इतने लड़के यहाँ कैसे? कुछ देर तक दोनों एक दूसरे की ओर देखते रहे। दोनों यह भी जताना चाहते थे कि वह दूसरे को नहीं देख रहे हैं।

युवक ने पूछा—"देवि, तुम यहाँ कैसे?"

कमला—"मैं पास के गाँव में से गंगा की पूजा करने आयी थी। क्या आप मुझे अपना परिचय देंगे?"

युवक कुछ देर चुप रह कर निश्शंक होकर बोला, देवि, मेरा नाम नरेन्द्र है। इसी गाँव में राय साहब

की लड़की से सात दिन बाद मेरा विवाह होना निश्चय हुआ था। मैं अपने पिता से छिप कर अपनी भावी जीवन-संगिनी को देखने आया था। मैंने देखा कि वह युवती जब टीड़ी खेतों में फैली हुई थी, ग़रीब किसानों की कुछ मदद करने के बदले दिखावटी विलायती कपड़ों को पहिन कर प्रसन्नता से पतङ्ग उड़ाती हुई नीचे खड़े हुए एक युवक से नेत्र-युद्ध कर रही है। मुझे उससे घृणा हो गई है। मैंने इस पास के झोंपड़े में रात्रि काटी है और इस ब्रह्म-मुहूर्त में टहलने को निकला हूँ। कमला नरेन्द्र का नाम सुन कर सहम गई और साहस करके बोली—"जिस क्रान्ति का आप गुण-गान कर रहे थे। वह क्रान्ति क्या वस्तु है ?"

नरेन्द्र—"क्रान्ति वह भयानक भूत है जिसके आगमन की सूचना-मात्र से ही ज़मींदार और मिल-मालिकों के दिल दहल उठते हैं। यह वह अस्त्र है जिसके प्रबल प्रहार से सत्ताधारी अत्याचारी शासक धूलधूसरित हो जाता है। यह वह सुन्दर फूल है जिससे युवकों के हृदय महक उठते हैं। यह वह मायावी देवि है जो मज़दूरों और किसानों को आशीषें दिया करती है।"

कमला—"यदि क्रान्ति सचमुच ही किसानों की सहायक और ज़मीदारों की विरोधिनी है तो मुझे ऐसी क्रान्ति ला दो।"

ये शब्द कमला ने इस प्रकार कहे थे जैसे नरेन्द्र कोई अपना ही हो जिससे वह कुछ भी काम करा सकती है। नरेन्द्र कमला का है। कमला नरेन्द्र की है—"मुझे क्रान्ति ला दो !"

नरेन्द्र—"क्रान्ति आयेगी—अवश्य आयेगी, सम्भव है भयंकर रूप धारण करके आये। प्राचीनता की नींव खोखली करके क्रान्ति का बीज बोया जा चुका है, वह फूलेगा और फलेगा। भारत की उत्तर-पश्चिम की घाटियों में झमझमाती हुई प्यारी क्रान्ति सजधज के साथ आ रही है।" पता नहीं, नरेन्द्र ने 'प्यारी' क्रान्ति के लिये कहा या कमला के लिये। कमला ने अपना सारा रहस्य वर्णन कर दिया—उसकी माता का अपमान उसके डूब मरने का निश्चय—और 'क्रान्ति' का नाम सुन कर बदला लेने का चाह। दोनों की आत्माओं का सम्बन्ध हो चुका था पर दोनों ने प्रण किया कि शारीरिक सम्बन्ध तब तक न जोड़ेंगे जब तक कि भोलानाथ से बदला न ले लिया जाये। सम्भव है, इस जीवन में यह सम्बन्ध कभी भी न हो। कमला सूर्योदय से पहिले ही घर लौट गई और नरेन्द्र आगे की कार्य-पद्धति पर विचार करने लगा।

दो दिन बाद कचहरी में कमला के माता पिता मुलज़िम के रूप में खड़े थे। रायसाहब मुद्दई थे। कन्या शान्ति के मारने का प्रयत्न करना और उसके २०००) के आभूषण छीन ले जाना

यही जुर्म था जिसको रायसाहब ने बड़ी सफ़ाई से साबित कर दिया। मजिस्ट्रेट ने दोनों को एक एक साल की सज़ा का हुक्म दिया। ठीक उसी समय एक पिस्तौल दागी गई। चारों ओर निस्तब्धता छा गई। रायसाहब की मृत देह पृथ्वी पर लोट रही थी। नरेन्द्र हाथ में पिस्तौल लिये खड़ा था। नरेन्द्र पकड़ा गया।

अगले दिन कचहरी में बहुत भीड़ थी। नरेन्द्र की शान्ति और सुन्दरता पर सब मोहित थे। पर किसी के मन में यह न आया कि उसने रायसाहब को मारा क्यों? जज ने पूछा—"तुम कोई सफ़ाई दे सकते हो? "नरेन्द्र ने बहुत लम्बा चौड़ा बयान दिया। कमला की माता के प्रति अत्याचार, रायसाहब की नृशंसता उसने सब कुछ कहा। उसके बयान के अन्तिम शब्द ये थे—

"मैं न्यायालय में उपस्थित था जब कि जनाज़ा उठाया जा रहा था। एक सहृदय वृद्धा और निरपराध न्याय का। वृद्ध को पापी भोलानाथ ने एक साल के लिये जेल भिजवा दिया। बहिरों को सुनाने के लिये और गूँगों को बुलवाने के लिये कल का मेरा पहिला प्रहार था। पूँजीपति बहरे हैं, श्रम-जीवी गूँगे हैं। मेरा कल का कार्य इस बात का द्योतक था कि क्रान्ति का आगमन हो चुका है। मैं क्रान्ति का उपासक हूँ—

क्रान्ति जो कि सब से न्याय कराती है और सब को काम करने का मौक़ा देती है। मैंने श्रमजीवियों को सजग करने के लिये और पूँजीपतियों की आगाही के लिये भोलानाथ को मारा है। पूँजीपतियों पर भारत में यह पहिला प्रहार है—कितने प्रहार और होंगे इसके उत्तरदायी पूँजीपति और शासक हैं। अब मैं उस समय की बाट जोह रहा हूँ जब कि मैं फाँसी के तख़्ते पर चढ़ कर परम पिता परमात्मा के न्यायालय में सिफारिश करूँगा कि भारत में साम्यवाद का राज्य हो, पूँजीपतित्व का नाश हो, साम्राज्यवाद संसार से हट जावे, क्रान्ति सदैव जीवित रहे, ग़रीबों के आहों से अत्याचारी शासकों और अमीरों के दिल दहल उठें, सूद खाने वाले बनियों के पेट फट जायें और संसार में समानता प्रचलित हो।

यह कह कर नरेन्द्र चुप हो गया, वही हुआ जो होना था। नरेन्द्र फाँसी के तख़्ते पर लटका दिया गया और उसका शव युवकों की पूजा के लिये जेल के बाहर रख दिया गया। युवकों की भीड़ को चीरती हुई एक युवती लाश से जा चिपटी। आज नरेन्द्र के विवाह का दिन था। यह स्वर्गीय प्रेम—मिलन था जिसे भूमि पर रेंगने वाले मनुष्य न समझ सके।

त्याग

शरद ऋतु की पूर्णिमा है। रात का समय है। चाँदनी छिटक रही है। सारा संसार क्षीर सागर में नहाया हुआ है। ऐसी सुन्दर रात में कान्ति ने अपनी कक्षा की सारी कन्याओं को नौका-विहार का निमन्त्रण दिया है। धीरे धीरे सारी कन्यायें इकट्ठी हो गईं। सब कन्याओं ने अपने सर्वोत्तम वस्त्र धारण किये हैं। केवल एक ही कन्या साधारण खद्दर की धोती पहने हुए है। सबकी दृष्टि मालती की ओर आकर्षित हो गई। सब आपस में कहने लगीं—तनिक मालती की शान देखो यह हमेशा सबसे निराली ही रहती है। जो सब करेंगी ज़रूर यह अपने को सबसे अलग रक्खेंगी। विचारी मालती पर चारों ओर से इसी तरह की बौछारें पड़ने लगीं। कान्ति ने कहा—चलो तुम भी अपने वस्त्र बदल लो। बहुत कहने सुनने पर मालती मान गई। वहाँ जाकर क्या देखती है कि उसके लिये कई साड़ियाँ कोई वायल की कोई जापानी रेशम की तथा अन्य

चमकीले वस्त्र रक्खे हुए हैं। उसने कहा—मैं तो केवल देशी ही कपड़े पहनती हूँ।

कान्ति के कई बार कहने पर मालती ने एक बनारसी साड़ी पहन ली। किन्तु फिर भी बिचारी कहने लगी: हे भगवन् जब देश की यह दशा है तो इसका सुधार कैसे होगा। नौका-विहार आनन्द पूर्वक समाप्त हुआ। मालती का चित्त अब भी अपनी धुन में लगा हुआ था। सोचते सोचते वह बिचारी नाव से उतरने वाली सब से पीछे रह गई। जैसे ही उसने नाव से पैर बाहर रक्खा वह एक दम पानी में जा पड़ा। दूसरा पैर भी उठ गया और वह पानी में गिर गई। दैवयोग से एक नवयुवक भी चाँदनी रात में गङ्गा के किनारे घूमने आया था। कन्याओं की कराठध्वनि सुनकर वह उस ओर बढ़ आया था। मालती को गिरा देखकर वह तुरन्त उसे उठाने आया। इतनी ही देर में एक लहर बड़े वेग से आई और मालती को बहा कर ले चली। युवक ने झटपट अपना कोट और जूते उतारे और तैर कर मालती को खींच लाया। सारी कन्यायें सहमी हुई खड़ी थीं। युवक ने झटपट मालती के मुँह व नाक से पानी निकाला और हाथों को ऊपर नीचे करके पेट का सारा पानी निकाल दिया। मालती शीघ्र ही चैतन्य हो गई और उसने आँखें खोल दीं। उसकी दृष्टि पहले उस युवक पर पड़ी। मालती

घबरा गई और उठने की चेष्टा करने लगी। युवक के मना करने पर लेटी ही रही। अन्य सहेलियाँ भी अब सम्भल गईं और मालती की तबीयत पूछने लगीं। अबकी मालती मना करने पर भी बैठ गई। उसके बदन में अब भी सनसनी फैली हुई थी वह कुछ बोल न सकी। कुछ क्षण पश्चात् वह युवक स्वयं ही कन्याओं से बोला—"यदि आप लोग उचित समझें तो मैं मोटर लाकर पहुँचा दूँ। मेरा घर यहाँ से पास ही है।"

कान्ति ने युवक की ओर बड़ी कृतज्ञता से देखा।

युवक भी लम्बे डग रखता हुआ शीघ्र ही मोटर लेकर आ पहुँचा। सब कन्यायें भी अपने अपने घर चली गईं। कान्ति, मालती तथा वह युवक मोटर में वैठ कर कान्ति के घर आये। कान्ति ने जल्दी से मालती के कपड़े बदले और युवक के पास जाकर बातें करने लगी। "आपका क्या नाम है?"

"मुझे लोग चन्द्रशेखर कह कर पुकारते हैं।"

मालती भी अपने रक्षक के बारे में जानने के लिये बड़ी उत्सुक हो रही थी। वह भी चुपचाप बातें सुनने लगी। बातों बातों में मालूम हो गया कि चन्द्रशेखर ने विलायत से लौट कर अभी बैरिस्टरी करना शुरू कर दी है। मालती को आराम करने की आवश्यकता जान चन्द्रशेखर ने वहां अधिक देर तक

रुकना उचित न समझा। बोले—"इन्हें शीघ्र ही सो जाना चाहिये। अच्छा मैं ही घर तक पहुँचा आऊँगा।"

मालती को साथ लेकर चन्द्रशेखर मालती के घर आये। रात अधिक हो जाने के कारण तथा कुछ मालती को आराम देने के विचार से चन्द्रशेखर 'फिर मिलूँगा' कह कर चले आये।

लौटने पर वह कान्ति व मालती का मिलान करने लगे—दोनों एक ही वयस की, एक ही साथ रहने वाली पर कितना परिवर्त्तन। एक नई रोशनी में रङ्गी हुई, दूसरी सीधी-सादी। एक बातों में चतुर सुन्दर वेश वाली, दूसरी लजीली मूर्त्ति। स्वयं नई रोशनी के होते हुए भी मालती की सराहना करने से न चूके। उनकी समझ में नहीं आता था कि कौन अधिक अच्छी है। इसी तरह विचारते हुए निद्रा देवी में लीन हो गये।

इधर मालती भी आदि से अन्त तक नौका-विहार की बातें सोचते सोचते सो गई। मालती ने देखा कि स्वदेश प्रेमियों का एक बड़ा भारी जुलूस निकल रहा है। एक झन्डे के ऊपर लिखा है 'देश की सेवा करो' दूसरे पर लिखा है 'देशोद्धार के लिए नये देवता का आह्वान करो'। फिर देखती है कि वह जुलूस गङ्गा के किनारे पहुँच गया। किनारे पर देश-भक्तों ने अपनी उङ्गलियाँ छेद कर रक्त निकाला और उसे कलशे में भर दिया। वह कलशा वहाँ गाड़ा गया। मालती

बड़े चक्कर में पड़ी कि यह बात क्या है ! पूछने पर मालूम हुआ कि जैसे राक्षसों के नष्ट करने को ऋषियों ने अपने रक्त को इकट्ठा करके सीता की उत्पत्ति की थी उसी प्रकार हम लोग भी सीता देवी का आह्वान कर रहे हैं। देखें सफलता कब तक होती है। देश भक्तों के इस नये रहस्य को जान कर हर्ष भी हुआ और दुख भी। हर्ष इसलिये कि अब देश दासत्व के फन्दे से छूटने ही वाला है और शोक देश की हीन दशा पर। वह सोचने लगी—देश का उद्धार कैसे हो ? मेरे साथ की सहेलियाँ अब भी अन्धकार में पड़ी हुई हैं। एक ओर देश-भक्त अपना रक्त बहा रहे हैं दूसरी ओर हमारी बहिनें फैशन ही को अपना देवता बनाये हुए हैं। सोचते सोचते गङ्गा के किनारे पहुँच गई। गङ्गा में गिर पड़ी। वही युवक बचाने आया। बाहर निकलने पर आँखें मिलते ही नीची हो गईं। रोमाञ्च हो आया। घबराहट से एक हल्की सी आह निकल पड़ी। आँख खुल गई। देखा वह सब स्वप्न था। शरीर काँपने लगा। आँखों की नींद न जाने कहाँ चली गई। यह कैसा अनुभव था ! न भय का, न दुःख का, न सुख का। जैसे तैसे रात बीती।

सबेरा हुआ। मालती पढ़ने बैठी। एक बार पढ़ा, दो बार पढ़ा, पढ़ती चली गई पर एक अक्षर भी समझ में न आया। अन्त में पाठशाला जाने का समय आ गया। झट से तैयार

होकर मालती जैसे ही गाड़ी की ओर जाने को हुई कि देखा चन्द्रशेखर आ रहे हैं। न जाने क्यों मालती वहीं रुक गई। कुछ देर खड़ी रही फिर चन्द्रशेखर के पास आई और बोली—"अब तो मैं बिल्कुल अच्छी हो गई।"

चन्द्रशेखर—"किन्तु यदि आज आराम करतीं तो अच्छा होता, तबियत सावधान हो जाती।"

"मैं बिल्कुल अच्छी हूँ। चलिये फिर घर में चलिये।"

"नहीं, इस समय मुझे कोई विशेष काम नहीं है। मैं केवल तुम्हारा हाल पूछने आया था। तुम तो स्वयं जा रही हो। मुझे भी इस समय जल्दी है। मैं शाम को आकर मिलूँगा।"

पर इसी समय एक और घटना हो गई। मालती जैसे ही फिर चलने को हुई कि एकाएक धोती से अटक कर पास का एक फूलों का गमला मालती के ऊपर गिर पड़ा। चन्द्रशेखर उसको उठाने को बढ़े। मालती का पैर छू गया। मालती को तो मानों बिच्छू ने काट खाया हो। उधर चन्द्रशेखर भी बड़ी विचित्र दशा में थे। किन्तु बात टालते हुए बोले—क्या तुम केवल खद्दर ही पहिनती हो।

'हाँ, अब कुछ दिनों से प्रयत्न कर रही हूँ' कहती हुई बिना किसी शिष्टाचार के गाड़ी पर बैठ गई। चन्द्रशेखर भी कोर्ट की ओर चल दिये।

विद्यालय में आज दिन भर मालती की कक्षा में मालती की ही चर्चा होती रही।

कान्ति ने मालती से पूछा—"कहो जी, अब कैसी हो। चन्द्रशेखर जी से हम लोगों को बहुत सहायता मिली। नहीं तो रङ्ग में भङ्ग होने वाला था।"

मालती ने कहा—"हाँ। यदि आज शाम को मेरे घर आओ तो बड़ी अच्छी बात हो। इस समय तो बात करने का समय नहीं है। तुमसे बातें बहुत-सी करनी हैं।" कान्ति राज़ी हो गई।

घर जाने की छुट्टी हो गई। मालती कान्ति को आने की याद दिला कर घर आ गई। घर आकर जल्दी से खा पी कर बाग़ में अमरूद के पेड़ की डाल पर एक पुस्तक ले कर बैठ गई। सोचा तो था कि सूरज डूबने से पहले ही थोड़ा सा पढ़-लूँ पर किताब में दिल न लगा।

धीरे धीरे सूरज डूबने लगा, चिड़ियाँ चहचहाने लगी पत्तों पर लाली छा गई। मालती का चित्त भी चिन्ता में डूबा हुआ था। सोचती थी—एक ओर देश सुधारने का तथा स्वराज्य पाने के लिये यथा शक्ति प्रयत्न करने का दृढ़ संकल्प दूसरी ओर ऐश्वर्य का पूरा सामान। एक ओर अपने भूखे ग़रीब भाइयों के लिये आत्म-बलिदान दूसरी ओर सांसारिक वैभव। एक ओर दर-दर मारे-मारे फिरना ऊपर से गाली खाना दूसरी

ओर आनन्द से घर की रानी बनना। कौन सी राह अधिक सराहनीय है ? मालती के हृदय में यह प्रश्न क्यों उठा ! जब एक बार देश-सेवा का बीड़ा उठा चुकी तो फिर अब चिंता क्यों ? मालती से घर में कई बार विवाह का प्रश्न किया गया तब तक मालती बिना विचारे ही झटपट मना कर देती थी। नौका-विहार की घटना से कुछ मन डाँवाडोल हो गया। इसी प्रकार सोचते-सोचते मालती को अपने स्वप्न का स्मरण हो आया। हमारे भाई तो देश के लिये रक्त चढ़ा रहे हैं। और हम दासत्व में ही आनन्द लेते हैं। मन को समझाने के लिये मालती गाने लगी—

क्यों मन जीवन सार विसारा !

विषय परायण मोह जगत में, फिरै अन्ध मतवारा।

धन दारा सुत काम न आवे, जिन पर कियो सहारा ॥

मालती इतना ही गा पाई थी कि पीछे से आवाज़ आई, 'यह वैरागियों का-सा गीत क्यों गाया जा रहा है।'

मालती ने मुड़ कर देखा। चन्द्रशेखर एक पेड़ की आड़ में से निकल रहे हैं।

मालती ने पूछा—"आप कितनी देर से आये हुये हैं ?"

"कुछ देर हुई।"

कुछ देर सन्नाटा रहा फिर चन्द्रशेखर बोले—

"तुम क्या सोच रहीं थी ?"

"कुछ नहीं। आज कान्ति को बुलाया है। वह भी अभी आती होगी" कहने की देर थी कि कान्ति भी आ पहुँची। कान्ति ने आते ही चन्द्रशेखर को नमस्कार किया और कहा—

"आपने कल हमारे साथ बड़ा उपकार किया उसके लिये मैं बड़ी कृतज्ञ हूँ।"

चन्द्रशेखर ने कहा—"मैं एक बात जानना चाहता हूँ। मैंने आप लोगों के बड़े बड़े विचार सुने हैं। आप लोगों के जीवन का लक्ष्य क्या है।"

कान्ति ने कहा—मालती देवी तो देश की सेवा करेंगी। देखा न कल। अपने शरीर की सेवा तो होती नहीं देश सेवा करेंगी। पैर तो सँभला नहीं, फिसल कर गिर पड़ीं। अब मालूम होता है अपने साथ देश को भी डुबोयेंगी।

चन्द्र शेखर—यह लक्ष्य उत्तम तो बहुत है किन्तु कठिन भी उतना ही है। तो इसको पूरा करने का क्या ढङ्ग निकाला है।

कान्ति और भी मुँह बना कर बोली "आत्म बलिदान करेंगी विवाह न करेंगी!"

चन्द्रशेखर चौंक पड़े, कुछ बोल न सके। मालती से न रहा गया बोली—"जब तुम्हीं हमारे उत्साह को तोड़ोगी तो इसको उत्तेजित कौन करेगा ?"

कान्ति—अच्छा अपना उपदेश रहने दो। चलो थोड़ा सा घूम आवें।

मालती—"आज मुझे क्षमा करदो आज न जाऊंगी।"

चन्द्रशेखर और कान्ति चले गये। मालती अपनी चिन्ता में ही बैठी रही।

× × ×

उस दिन से कान्ति और चन्द्रशेखर का आना-जाना बहुत बढ़ गया। सुबह शाम किसी न किसी बहाने से चन्द्रशेखर कान्ति के पास अवश्य जाते थे। मालती को भूल-से गये थे। पर फिर भी कभी कभी जब स्मरण हो जाता था तो मालती की प्रशंसा किये बिना न रहते। सोचते थे—मालती देवी है। उस के सामने सिर झुकाते ही बनता है। हम लोग मनुष्य हैं इसी लिये मालती के साथ नहीं रह सकते। इसी तरह कुछ दिन बीत गये। मालती के भाई कृष्णकुमार विलायत से इन्जीनियरिंग पास करके लौटे। रङ्ग ढङ्ग बिल्कुल बदल गया। सिनेमा व डान्स (Dance) में जाना, पार्टी करना उनके नित्य कर्म हो गये थे। मालती को यह देख कर बहुत दुःख होता था। विशेष दुख तो कृष्णकुमार के देश-प्रेम को फैशन के ऊपर बलि होता देख कर हुआ करता था।

एक दिन कृष्ण कुमार ने अपने मित्रों को पार्टी का निमंत्रण दिया। मालती से बोले—"देखो मालती! तुम टाट जैसी धोती पहिन कर खड़ी हो जाती हो मुझे इसमें बड़ी लज्जा मालूम होती है। मेरे मित्र लोग क्या कहेंगे कृष्ण कुमार की ऐसी बहिन! मालती, आज तुम ज़रूर अच्छे कपड़े पहिनना। पहिनोगी न ?"

मालती—"भैया। तुममें इतना परिवर्तन क्यों हो गया है ?' पहिले तो तुम्हें मेरी खद्दर की धोती टाट नहीं लगती थी। भैया! तुम्हारी बात सुन कर मुझे दुःख होता है। तुम्हें याद होगी जब हम तुम छोटे छोटे थे। गांधी जी आये हुये थे। उनका व्याख्यान सुनने पर तुम भी देश की हालत पर रोये थे और मैं भी। तुम्हें याद होगा हम दोनों ने प्रतिज्ञा की थी कि अब से हम लोग देशोद्धार का यथाशक्ति प्रयत्न करेंगे। फिर आज तुम ऐसे शब्द क्यों कह रहे हो ?

कृष्ण कुमार का अस्तित्व साहबी पोशाक और चाल-ढाल के अन्दर छिपा हुआ था। उन्हें ज्ञात न था कि उनके हृदय के अन्दर क्या है। मालती के शब्दों ने कृष्ण कुमार के हृदय को सोते से जगा दिया। कृष्ण कुमार की आखें खुल गईं। बोले—

"अच्छा मालती, अबसे सचमुच देश का ध्यान रक्खूँगा।"

पार्टी का समय निकट आ गया। चन्द्रशेखर भी आये थे। कान्ति भी आई थी। कान्ति की चमक दमक निराली ही थी। चन्द्रशेखर ने देखा कि मालती की भव्य मूर्ति के आगे कान्ति की सुसज्जित वेष भूषा फीकी पड़ गई। चन्द्रशेखर का प्रेम अब देश की ओर बढ़ता जा रहा है। उन्हें याद आ गई; कोई मेले का दिन था। एक साधारण पुरुष गंगा-स्नान से लौट रहा था एक अंग्रेज भी मेले की सैर करने आया था। भीड़ अधिक होने के कारण वह मनुष्य उस अंग्रेज के आगे जा पड़ा। अंग्रेज ने तुरन्त ही अपने पैर से उसे धक्का दे दिया। वह मनुष्य धक्के के ज़ोर से गिर पड़ा। पर हिम्मत न हारा। अपने कपड़े झाड़कर उस साहब की पीठ पर दो घूंसे कस कर जमाये और कहा—तुम्हें लज्जा नहीं आती। तुम इतने मोटे तगड़े होते हुए भी एक दुबले पतले ग़रीब मनुष्य को सताते हो। साहब बेचारा मुँह ताकता रह गया। इतने में सिपाही लोगों ने उस मनुष्य को पकड़ लिया। अंग्रेज उस मनुष्य की निर्भीकता पर दंग हो रहा था। सिपाहियों को आज्ञा दी, 'इसे छोड़ दो' बहुत चापलूसी करने के बाद सिपाहियों ने उसे छोड़ दिया। उस अंग्रेज ने उस मनुष्य से हाथ मिलाया और कहा, 'हम तुम्हारी वीरता से बहुत प्रसन्न हुए।' चन्द्रशेखर सोच रहे थे कि हम लोग ही अपनी निर्बलता के कारण हैं। दूसरों की ठकुर-

सोहाती करके अपने दुखी भाइयों को और भी तङ्ग करते हैं। हम लोगों के हाथ में ही बड़ा व छोटा बनना है।

चन्द्रशेखर ने मालती से कहा—"सुना है गान्धी जी आने वाले हैं।"

"सच। तो आप उनके आने पर क्या बलि दीजियेगा।"

"यह साहबी रङ्ग ढंग, विदेशी वस्त्र। तुम और क्या चाहती हो"

"कुछ नहीं।"

इतने में चन्द्रशेखर ने देखा कान्ति और कृष्ण कुमार हाथ पकड़े टहलते हुए कमरे से बाहर जा रहे हैं। शेष आये हुए व्यक्ति जा चुके हैं। चन्द्रशेखर के चित्त ने उचाट खायी। उन्होंने सोचा न यह विदेशी पोशाक ही सुखदायी और न विदेशी चाल में फँसे हुए क़ैदी ही। दोनों जगह धोखा खाया। वहाँ बैठने को जी न चाहा मालती से "अच्छा तो मैं अब जाता हूँ" कह कर चन्द्रशेखर चल दिये।

मालती अपने भावों को समझ न सकी। चन्द्रशेखर के शब्द "तुम और क्या चाहती हो" मालती के कानों में गूँज रहे थे। "विदेशी वस्त्रों का त्याग" यह सुन कर मालती प्रसन्नता से फूल उठी। अब सोचने लगी—अरे अब तो चले गये, नहीं तो बहुत सा धन्यवाद देती। मालती को

अपने स्वभाव पर बड़ा क्रोध आ रहा था। उस समय बोलना चाहिये था पर "कुछ नहीं" कह कर ही चुप हो गई।

× × ×

लगभग एक मास बीत गया। चन्द्रशेखर का पता नहीं कहाँ चले गये। मालती की बेचैनी बढ़ती गई। उस दिन सोच रही थी कि अब की जब चन्द्रशेखर आयेंगे तो बहुत सा धन्यवाद दूँगी। सोचती थी अब की खूब दिल खोल कर बात करूँगी। पर जब से सोचा था तब से चन्द्रशेखर का पता ही नहीं था। इसी प्रकार दिन पर दिन बीतने लगे। गान्धी जी आ गये। सब लोग उनके स्वागत की बड़ी तैयारियाँ कर रहे हैं। कोई धन का दान माँगता है तो कोई विदेशी कपड़ों का ढेर इकट्ठा कर रहा है। आज गान्धी जी का व्याख्यान जमुना जी के किनारे होगा। भीड़ इकट्ठी हो गई। गान्धी जी आ गये। मालती भी अपनी झोली उड़ेलने गयी। वहाँ देखा उनकी दाहिनी ओर कोई बैठा हुआ है। हैं! यह तो चन्द्रशेखर ही हैं! कहीं धोखा तो नहीं हो रहा है! नहीं यह सचमुच चन्द्रशेखर ही हैं! मालती के हृदय में बड़ी उथल-पुथल मच गई।

व्याख्यान समाप्त हुआ। गान्धी जो जाने लगे। चन्द्रशेखर रह गये। मालती दौड़ी हुई आई पर फिर वही दशा। कुछ बोलते न बन पड़ा। इतने दिनों का तैयार किया हुआ

पाठ सब निरर्थक हो गया। मालती की समझ में न आता था कि क्या कहूँ। एक बार ऊपर आँख उठा के देखा तो चन्द्रशेखर को अपनी ओर देखते हुये पाया। रही सही शक्ति भी जाती रही। अब की बार चन्द्रशेखर ने ही उस शान्ति को भङ्ग किया।

"मालती, देखो मैंने अपना कहा पूरा कर दिया। पर यह तो बताओ। तुमने भी कुछ बलि दी ?"

मालती कुछ न बोली।

चन्द्रशेखर ने फिर कहा—"मालती ! तुम तो देश भक्त हो। फिर मेरे इस त्याग का पुरस्कार दे कर क्या उत्साह न बढ़ाओगी।"

मालती ने पूछा—"क्या दूँ ?"

"अपना हाथ !"

मालती की अश्रु-धारा बह चली। इतने दिनों का पाठ आँसुओं के रूप में जा निकला। हाथ अपने आप से चन्द्रशेखर के हाथ में जा पड़ा।

चन्द्रशेखर ने कहा—"कहो, किसने अधिक त्याग किया। मैंने या तुम ने ?"

इस बार मालती की ओठों पर मुस्कान थी।